रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला.

सप्तभङ्गीतरङ्गिणी ।

वन्दित्वा सुरसन्दोहवन्दिताङ्घ्रिसरोरुहम् ।
श्रीवीरं कुतुकात्कुर्वे सप्तभङ्गीतरङ्गिणीम् ॥ १ ॥

इह खलु तत्त्वार्थाधिगमोपायं प्रतिपादयितुकाम. सूत्रकार. "प्रमाणनयैरधिगम" इत्याह । तत्राधिगमो द्विविध: स्वार्थ:, परार्थश्चेति । स्वार्थाधिगमो ज्ञानात्मको मतिश्रुतादिरूप: । परार्थाधिगम' शब्दरूप. । स च द्विविध –प्रमाणात्मको नयात्मकश्चेति । कात्स्न्र्यतस्तत्त्वार्थाधिगम' प्रमाणात्मक: । देशतस्तत्त्वार्थाधिगमो नयात्मक: । अय द्विविधोऽपि भेद सप्तधा प्रवर्तते, विधिप्रतिषेधप्राधान्यात् । इयमेव प्रमाणसप्तभङ्गी नयसप्तभङ्गीति च कथ्यते । सप्तानां भङ्गानां–वाक्यानां, समाहार: समूह:, सप्तभङ्गीति तदर्थ. । तानि च वाक्यानि–

भाषाकारका मङ्गलाचरण.

गणेशं विघ्नहर्त्तारं वीतरागमकल्मषम् ।
प्रणम्य परया भक्त्या यत्नमेतं समारभे ॥ १ ॥
श्रीगुरोश्चरणद्वन्द्वं स्मारं स्मारमहर्निशं ।
सप्तभङ्गितरङ्गिण्या अनुवादं करोम्यहम् ॥ २ ॥

शिष्टाचारप्राप्त विघ्नविनाशार्थ तथा ग्रन्थकी परिसमाप्तिकी कामनासे उक्त ग्रन्थकार श्रीविमलदासजी स्वाभीष्ट श्रीअर्हन् भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना 'वन्दित्वा' इत्यादि श्लोकसे करते है ।

श्लोकान्वय—अहं विमलदासः यह अध्याहृत पद है. सुरसन्दोहवन्दिताङ्घ्रिसरोरुहं श्रीवीरं–श्रिया अष्टप्रातिहार्य्यादिलक्ष्म्या पञ्चकल्याणसमये इन्द्रासनकम्पनादिलक्ष्म्या च युक्तो वीरः श्रीवीरस्तं वन्दित्वा कुतुकात् सप्तभङ्गीतरङ्गिणीम् कुर्वे ॥ भावार्थ—मै विमलदास सम्पूर्ण देवसमूहोंसे जिसका चरणकमल नमस्कृत है ऐसे अर्थात् सर्व देवसमूह नमस्कृत रक्तचरणारविन्दयुक्त तथा अष्ट महा

१ नमस्काररूप मङ्गलाचरण २ निखिलदेवसमूहनमस्कृतचरणपङ्कजम् ३ नमस्कृत्य ४ कुतूहलादनाया-
१ किसी अपेक्षा [illegible] दस्ति नास्तीत्यादि भङ्गानां समाहारः सप्तभङ्गी तद्रूपा तरङ्गिणीम्. ६ रचयामीति
किसी विवक्षासे [illegible]

प्रातिहार्य्यादि लक्ष्मी और गर्भ निवासादि पञ्च मंगल समयमें इन्द्रोंके आसनोंकी कम्पन आदि श्रीयुक्त महावीरस्वामीको नमस्कार करके कुतूहल अर्थात् अनायाससे (बिनापरिश्रमके) इस सप्तभङ्गितरङ्गिणी नाम ग्रन्थको अर्थात् स्यादस्ति स्यान्नास्ति इत्यादि सप्त भेद प्रतिपादक तर्कशास्त्रको रचता हूं ॥

जबतक सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति नहीं होती तबतक प्राणी अनादिकालसे प्रवृत्त इस ससारमे कर्मोके बन्धनसे मुक्त होकर मुक्तिरूप सुखको कदापि नहीं प्राप्त होता और इनकी प्राप्ति जीव आदि तत्त्वोंके पूर्ण ज्ञानसे होती है. इसी हेतुसे भगवान् सूत्रकारने तत्त्वार्थज्ञानके उपायके प्रतिपादनकी इच्छासे "प्रमाणनयैरधिगमः" यह सूत्र कहा है. अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक तथा नाम स्थापना द्रव्य आदि विधिसे निक्षिप्त जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा, तथा मोक्षरूप तत्त्वार्थोंका अधिगम, प्रमाण तथा नयसेही होता है. इस सूत्रमें जो अधिगम कहा है वह दो प्रकारका है । एक स्वार्थ अधिगम दूसरा परार्थ अधिगम. इनमें मतिश्रुत आदिरूप ज्ञानात्मक अधिगमको स्वार्थाधिगम कहते है और शब्दात्मक अर्थात् वचनरूप अधिगमको परार्थाधिगम कहते हैं । और पुन वह अधिगम प्रमाणरूप तथा नयरूप इन दो भागोंमें विभक्त है । इनमेंसे सम्पूर्ण रूपसे तत्त्वार्थाधिगम जिसकेद्वारा होता है उसको प्रमाणात्मक कहते है । और एक देशसे जिसकेद्वारा तत्त्वार्थाधिगम होता है उसको नयात्मक कहते है । पुन विधि तथा निषेधकी प्रधानतासे ये दोनो भेदं सप्तभङ्गमे विभक्त है । इसी सप्त विभाग समूहको प्रमाणसप्तभङ्गी और नयसप्तभङ्गी भी कहते है क्योकि 'सप्तानां भङ्गाना वाक्याना समाहार समूह सप्तभङ्गी' अर्थात् सप्त भङ्गोका जो समूह है उसका नाम सप्तभङ्गी है. इस प्रकार सप्तभङ्गी शब्दका व्याकरणकी रीतिसे अर्थ होता है जैसे 'त्रयाणा लोकाना समाहार त्रिलोकी' अष्टाना सहस्राणां समाहारः अष्टसहस्री । अर्थात् तीन लोकोका जो समूह उसको त्रिलोकी, और अष्ट सहस्रोंका जो समूह है उसको अष्टसहस्री कहते है । ऐसे ही सप्तभङ्गोंके समूहको सप्तभङ्गी कहते है । इन सप्तभङ्गोंका विभाग इस प्रकार है ।

"स्यादस्त्येव घटः ॥ १ ॥ स्यान्नास्त्येव घटः ॥ २ ॥ स्यादस्ति नास्ति च घटः ॥ ३ ॥ स्यादवक्तव्य एव ॥ ४ ॥ स्यादस्ति चावक्तव्यश्च ॥ ५ ॥ स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च ॥ ६ ॥ स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च ॥ ७ ॥ " इति एतत्सप्तवाक्यसमुदाय सप्तभङ्गीति कथ्यते ।

स्यादस्ति घट	कथंचित् घट है ॥ १ ॥
स्यान्नास्ति घटः	कथंचित् घट नहीं है ॥ २ ॥

---

१ लक्ष्मी वा ऐश्वर्य्यसहित अन्तिमतीर्थकरको २ महातत्त्वार्थ सूत्र अध्या ४ प्रमाण तथा नयरूप ५ सात ६ वाक्योंका ७ आठ

स्यादस्ति नास्ति च घट	कथंचित् घट है और कथंचित् नही है ॥ ३ ॥
स्यादवक्तव्यो घटः	कथंचित् घट अवक्तव्य है ॥ ४ ॥
स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घट॰	कथंचित् घट है और अवक्तव्य है ॥ ५ ॥
स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घट॰	कथंचित् नही है तथा अवक्तव्य घट है ॥ ६ ॥
स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च घटः	कथंचित् है नहीं है इस रूपसे अवक्तव्य घट है॥७॥

इनही सप्तवाक्योंके समुदायका नाम सप्तभङ्गी है ।

तल्लक्षणन्तु प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोज्यत्वे सति, एकवस्तुविशेष्यकाविरुद्धविधिप्रतिषेधात्मकधर्मप्रकारकबोधजनकसप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायत्वम् । वर्त्तते चेदं लक्षणं दर्शितवाक्यसप्तके । तथाहि प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोज्यत्वं हि परम्परया प्राश्निकप्रश्नज्ञानजन्यत्वम् । तथा च प्राश्निकप्रश्नज्ञानेन प्रतिपादकस्य विवक्षा जायते, विवक्षया च वाक्यप्रयोग, इति प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोज्यत्वमुक्तसप्तवाक्यसमुदायस्याक्षतम् । एव घटादिरूपैकवस्तुविशेष्यकाविरुद्धविध्यादिप्रकारको यो बोध॰ घटोऽस्तीत्यादिरूपो बोध , तज्जनकत्वं च वर्तत इति ।

इस सप्तभङ्गीका लक्षण यह है कि—प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नज्ञानका प्रयोज्य रहते, एक पदार्थ विशेष्यक अविरुद्ध विधिप्रतिषेधरूप नानाधर्मप्रकारक बोधजनक सप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायता । अर्थात् प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नज्ञानका जो प्रयोज्य रहते एक किसी पदार्थको विशेष्य करके अर्थात् एक वस्तुमें परम्पर अविरुद्ध नाना धर्मोका निश्चायक ज्ञानजनक सप्तवाक्योमे रहनेवाला सप्तभङ्गी नय है । यह लक्षण पूर्वोक्त सप्तवाक्य समुदायमे है । इसका समन्वय इस प्रकार है । प्रश्नकर्ताके प्रश्नज्ञानकी प्रयोज्यता परपरासे प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नज्ञानकी जन्यतारूप होगी । अर्थात् प्रश्नकर्त्ताका प्रश्न तो जनक और प्रश्नज्ञान उसका जन्य होगा । क्योंकि प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नज्ञानसे ही प्रतिपादन करनेवालेकी[1] विवक्षा होती है और विवक्षासे वाक्य प्रयोग होता है । इस रीतिसे प्राश्निक प्रश्नज्ञान प्रयोज्यता पूर्वोक्त इस वाक्यसमूहकी पूर्णरूपसे है और इसीप्रकार घट आदि एक पदार्थ विशेष्यक परस्पराविरुद्ध विधिनिषेधरूप नानाधर्म प्रकारक **'स्यादस्ति घटः स्यान्नास्ति घटः'** किसी विवक्षासे घट है किसी विवक्षासे नही है ऐसा जो ज्ञान है उसका जनक पूर्वोक्त सप्तभङ्गी नय है ॥

तदिदमाहुरभियुक्ता —"प्रश्नवशादेकत्र वस्तुन्यविरोधेन विधिप्रतिषेधकल्पना सप्तभङ्गी" इति॥

इस विषयमें आचार्योंने ऐसा कहा है । प्रश्नके वशसे एक किसी घटादि वस्तुमें अविरोधरूपसे विधि तथा प्रतिषेधकी जो कल्पना है उसको सप्तभङ्गी नय कहते हैं ।

अस्यायमर्थ॰—'प्रश्नवशात्' इत्यत्र पञ्चम्या॰ प्रयोज्यत्वमर्थ॰ । विधिप्रतिषेधकल्पनेत्यस्य विधिप्रतिषेधप्रकारक[illegible]र्थ. । अविरोधेनेति तृतीयार्थो वैशिष्ट्यं विधिप्रतिषेधयोरन्वेति ।

---

१ किसी अपे[illegible] २ [illegible] नास्ति आदि रूप ३ उत्तरदाताकी ४ कहनेकी इच्छा ५ कथनकी इच्छासे. ६ किसी विवक्षासे [illegible] विवक्षासे नहीं है. ७ प्रश्नाऽनुसार.

एकत्र वस्तुनीत्यत्र सप्तम्यर्थो विशेष्यत्वम्। तस्य कल्पनापदार्थबोधजनकत्वैकदेशे बोधेऽन्वयः सप्तभङ्गीत्यस्य सप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायत्वाश्रयोऽर्थः। तथाचास्मदुक्तलक्षणमेव पर्यवसन्नम्।

इस वाक्यमें **'प्रश्नवशात्'** यह जो पञ्चम्यन्त पद है इस पदमें पञ्चमी विभक्तिका प्रयोज्यता अर्थ है **'विधि प्रतिषेध कल्पना'** इस पदका विधिप्रतिषेध प्रकारक बोधजनिका अर्थ है **'अविरोधेन'** यहा तृतीया विभक्तिका वैशिष्ट्य अर्थ है और उसका अन्वय विधिप्रतिषेधके साथ होता है। **'एकत्र वस्तुनि'** इस पदमें सप्तमीका अर्थ विशेषता है और उसका अन्वय बोधजनकतारूप जो कल्पना पदार्थ उसके एक देशभूत बोधके साथ होता है। और सप्तभङ्गी इस पदका अर्थ सप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायताश्रय है। इस रीतिसे हमने प्रथम जो सप्तभङ्गी लक्षण कहा है वही सिद्ध हुआ अर्थात् प्राश्निक प्रश्नज्ञानका प्रयोज्य होकर एक वस्तु विशेष्यक अविरुद्ध विधिप्रतिषेधरूप नानाधर्मप्रकारक बोधजनक सप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायतारूप जो है वही सप्तभङ्गी नय है॥

अत्र च प्रत्यक्षादिविरुद्धविधिप्रतिषेधवाक्येष्वतिव्याप्तिवारणायाविरुद्धेति। घटोऽस्ति पटो नास्तीत्यादिसमुदायवारणाय एकवस्तुविशेष्यकेति। स्यादस्ति घटः, स्यान्नास्ति घटः, इति वाक्यद्वयमात्रेऽतिव्याप्तिवारणाय सप्तेति घटमानयेत्युदासीनवाक्यघटितनिरुक्तवाक्यसप्तकेति अव्याप्तिवारणाय सप्तवाक्यपर्याप्तेति।

इस लक्षणके जो विशेष्य दलमें अविरुद्ध विधिप्रतिषेधात्मक धर्मप्रकारक इस पदमें अविरुद्ध पद है वह प्रत्यक्षादि प्रमाणसे विरुद्ध जो विधिप्रतिषेधरूप वाक्य है उनमे अतिव्याप्ति दोष वारणकेलिये है। क्योंकि लक्षण ऐसा होना चाहिये जिसमे अतिव्याप्ति अव्याप्ति तथा असभव दोष न हों। और **'घटोस्ति पटो नास्ति'**[1] इत्यादि समुदायमे लक्षण न जाय इसलिये **'एकवस्तुविशेष्यक'**[2] यह पद दिया है। **'स्यादस्ति घटः स्यान्नास्ति घटः'**[3] इन दो वाक्योंमे अतिव्याप्ति वारण करनेके अर्थ सप्त यह पद दिया है॥ तथा **'घटमानय'**[4] इस उदासीन वाक्यघटित घटको लेकर पूर्वोक्त वाक्य सप्तकमें अव्याप्ति दोष निराकरण करनेके अर्थ **'सप्तवाक्य पर्याप्त समुदायता'** यह विशेषण दिया है अर्थात् इन सप्त पूर्वोक्त वाक्योमें ही यह लक्षण घटित होता है अन्यत्र नहीं॥

यद्यपि सत्यन्तनिवेशस्यातिव्याप्त्यव्याप्त्यादि दोषवारकत्वं न सम्भवति, तथापि प्रतिपाद्यप्रश्नानां सप्तविधानामेव सद्भावात्सप्तैव भङ्गा इति नियमसूचनाय तन्निवेशनम। ननु-प्रश्नानां सप्तविधत्व कथमितिचेत, जिज्ञासाना सप्तविधत्वात्। प्राश्निकनिष्ठजिज्ञासाप्रतिपादकवाक्यं हि प्रश्न इत्युच्यते।

यद्यपि लक्षणमें जो सत्यन्त विशेषण दल है अर्थात् **'प्राश्निक प्रश्नज्ञान प्रयोज्यत्वे सति'**[5] इतना अश अतिव्याप्ति तथा अव्याप्ति दोषोंके निवारण करनेमें सम्भव

---

१ घट है पट नहीं है. २ एकवस्तु विशेष्य करके ३ कथंचित् घट है कथंचित् नहीं है. ४ घट लाओ. ५ प्रश्नकर्त्ताके प्रश्न ज्ञानका प्रयोज्य रहते.

नहीं हो सकता तथापि प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नोंके सप्त ही भेद हो सकते है. इसी हेतु भङ्ग अर्थात् वाक्य भी सात ही हो सकते है. इस नियमके सूचनार्थ सत्यन्तदल लक्षणमें नियत किया है. क्योंकि उत्तरदाता प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नोंको जानकर उसके बोधार्थ वाक्यप्रयोग करता है. अतएव सप्तभङ्ग प्रश्नकर्त्ताके प्रश्न ज्ञानके प्रयोज्य अवश्य हुये। शङ्का–प्रश्नोंके सप्त भेद क्योंकर हो सकते है? यदि ऐसी शङ्का करो तो उत्तर यह है कि–प्रश्नकर्त्ताके जाननेकी इच्छाओंके सात ही भेद हो सकते हैं क्योंकि प्रश्न कर्त्तामें जो किसी पदार्थकी जाननेकी इच्छा है उस इच्छाके प्रतिपादक जो वाक्य है उनको ही प्रश्न कहते है क्योंकि गो पदार्थको न जाननेवाला पुरुष गौके जाननेकी इच्छासे किसी पुरुषसे प्रश्न करता है कि **'गोपदवाच्यं किम्'** तब वह उत्तर देता है कि **"सास्नालाङ्गूलककुत्खुरविषाणाद्यर्थविशिष्टो गौः"** सास्ना अर्थात् जो गलेमें स्थित रोम मास समूहरूप कम्बल ककुद्, खुर तथा विषाण इत्यादि पदार्थ विशिष्ट गो होता है. **'कः गौः'** इस प्रश्नसे गौको न जाननेवाले पुरुषकी उस पदार्थके जाननेकी इच्छाहीसे वक्ता उत्तर देता है. क्योंकि जिस पदार्थके जाननेकी इच्छा नहीं है उसको बोधन कराना अयोग्य है. उस पुरुषके जाननेकी इच्छा वक्ताको अर्थात् उत्तरदाताको उसके प्रश्नसे ज्ञात होती है. इसी कारणसे प्रश्नकर्त्ताका प्रश्न ही जिज्ञासाका प्रतिपादक वाक्य है और वह उत्तरदाताके ज्ञानका जनक है कि अमुक प्रश्नकर्त्ता अमुक पदार्थ जानना चाहता है, उसीके अनुसार वह उत्तरदानमे प्रवृत्त होता है ॥

ननु सप्तधैव जिज्ञासा कुत इति चेत्, सप्तधा संशयानामुत्पत्तेः। संशयानां सप्तविधत्वन्तु तद्विषयीभूतधर्माणां सप्तविधत्वात्। तादृशधर्माश्च कथञ्चित्सत्त्वं, कथञ्चिदसत्त्व, क्रमार्पितोभय, अवक्तव्यत्व, कथञ्चित्सत्त्वविशिष्टावक्तव्यत्वं, कथञ्चिदसत्त्वविशिष्टावक्तव्यत्वम्, क्रमार्पितोभयविशिष्टावक्तव्यत्वम्, चेति सप्तैव। एवं च दर्शितधर्मविषयका सप्तैव संशया। अत्र घटः स्यादस्त्येव वा नवेति कथञ्चित्सत्त्वतदभावकोटिकः प्रथमसंशयः।

अब कदाचित् यह कहो कि सप्त ही प्रकारकी जाननेकी इच्छा क्यों होती है? तो इसका उत्तर यह है कि,–सशयोंके भेद भी सात ही प्रकारके होते है और सशयोके सात प्रकारके होनेका कारण यह है कि संशयोंके विषयीभूत धर्मोंके भेद सप्त ही प्रकारके है। उस प्रकारके धर्म कथचित् सत्त्व १ कथचित् असत्त्व २ कथचित् क्रमसे समर्पित सत्त्व असत्त्व उभयरूप ३ कथंचित् अवक्तव्य ४ कथचित् सत्त्वविशिष्ट अवक्तव्य ५ कथंचित् असत्त्व विशिष्ट अवक्तव्यत्व ६ कथंचित् क्रमसे समर्पित सत्त्व और असत्त्व एतदुभय विशिष्ट अवक्तव्यत्व ७ ये सात हैं. इस प्रकार पूर्वप्रदर्शित सत्त्व आदि विषयक सात ही सशय हो सकते है।

---

१ सात. २ [illegible] किसको कहते है. ४ गर्दनके समीप पीठपर उच्च शरीरका अवयव ५ सफ ६ राङ्ग. ७ गौ क्या है. ८ [illegible] इच्छाका. ९ सात १० किसी विवक्षा वा अपेक्षासे. ११ पहिले दर्शाये हुये

यहांपर 'घटः स्यादस्त्येव वा नवा' यह घट विषयक सत्त्व तथा उसके अभावविषयक प्रथम संशय है ॥

ननु च–कथञ्चित्सत्त्वस्याभाव. कथञ्चिदसत्त्वम्, तस्य न संशयविषयत्वसम्भवः, कथञ्चित्सत्त्वेन साकं विरोधाभावात् । एक धर्मिकविरुद्धनानाधर्मप्रकारकज्ञानं हि संशय नत्वेकधर्मिकनानाधर्मप्रकारकज्ञानमात्रं, तथा सति अय घटोद्रव्यमित्यादीदन्त्वावच्छिन्नविशेष्यकघटत्वद्रव्यत्वरूपनानाधर्मप्रकारकज्ञानस्यापि संशयत्वापत्ते. । तथा च कथं घटस्स्यादस्त्येव न वेति संशय इति चेत् ? उच्यते,–दर्शितसंशये कथञ्चिदस्तित्वसर्वथास्तित्वयोरेवकोटिता; तथा च नोक्तानुपपत्ति, तयोश्च परस्परम् विरुद्धत्वात् ।

शङ्का–कथंचित् सत्त्वका अभाव कथचित् असत्त्वरूप ही है वह संशयका विषय नहीं हो सकता क्योंकि कथंचित् सत्त्वके साथ उसका विरोध नही है कथचित् सत्त्व और कथचित् असत्त्व इनका विरोध नहीं है किसी विवक्षासे सत्ता और किसी विवक्षासे असत्ता भी रह सकती है । क्योंकि एक धर्मिक एक पदार्थविषयक परस्पर विरुद्ध नानाधर्म प्रकारक ज्ञानको संशय कहते है । जैसे एक वृक्षके ठूंठको देखकर 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' ऐसे विरुद्ध नाना ज्ञानको सशय कहते है । स्थाणुत्व और पुरुषत्व ये दोनों विरुद्ध धर्म एक विषयमें हुये इस हेतुसे यह सशय ज्ञान है । न कि एक पदार्थविषयक नानाधर्म प्रकारक ज्ञानमात्रको सशय कहते है । क्योंकि परस्पर नानाधर्मोके विरोधके अभावमें एक पदार्थमें नानाधर्ममात्रको यदि सशय ज्ञान मानोगे तो 'अयं घटो द्रव्यम्' इत्यादि वाक्यमे इदन्तावच्छिन्न विशेष्यक घटत्व तथा द्रव्यत्वरूप नानाधर्म प्रकारक ज्ञान भी संशयरूप ज्ञान हो जायगा क्योंकि इसमें घटत्व और द्रव्यत्व ये नानाधर्म है परन्तु घटत्व और द्रव्यत्व इन दोनों धर्मोका विरोध नहीं ऐसे ही कथचित् सत्त्व असत्त्वका विरोध नही है तो इस रीतिसे 'घटः स्यादस्त्येव न वा' इस ज्ञानको सशयरूपता कैसे होगी ? यदि ऐसा कहो तो इसका उत्तर कहते है–पूर्वदर्शित विषयमे कथंचित् अस्तिता और सर्वथा अस्तित्व ये दो कोटि है । इस कारणसे पूर्वोक्त शङ्का युक्त नहीं है । क्योंकि घट विषयक कथञ्चित् अस्तिता और सर्व प्रकारावच्छिन्न अर्थात् सर्व प्रकारसे अस्तिता इन दोनों धर्मोका परस्पर विरोध प्रसिद्ध ही है एक कोटिमे कथचित् अस्तिता है और दूसरी कोटिमें सर्वथा अस्तिता है. जैसे जीव विषयमे दो कोटि हो सकती है. कथञ्चित् साकारता और सर्वथा साकारता । यह संशय दो भावकोटिको लेकर प्रवृत्त है इसीसे 'अयं स्थाणुर्वा पुरुषो वा' यह स्थाणु है वा पुरुष है यहां दोनोमें स्थाणु तथा पुरुषमे दीर्घादि गुण समान ज्ञात होनेसे तथा पुरुषके हस्त पाद अवयव और स्थाणुके कोटर आदि आकार ज्ञात न होनेसे संशय

१ घट है या नहीं २ सत्ता ३ असत्ता ४ यह स्थाणु (ठूठ) है वा पुरुष है ५ सन्देहात्मक. ६ अविरुद्ध धर्म. ७ यह घट द्रव्य है. ८ घट कथञ्चित् है या नहीं ९ घट. [illegible]. १० किसी अपेक्षासे सत्ता. ११ सर्व प्रकारकसे सत्ता १२ वृक्षका ठूठ १३ खोखल

होता है। ऐसे ही एक पदार्थकी सर्वथा अस्तिता है वा कथञ्चित् अस्तिता है इन दोनों भाव कोटिको लेकर संशय हो सकता है ॥

अथ–कुत्रचित्प्रसिद्धयोरेव संशयकोटिता, यथा–स्थाणुत्वपुरुषत्वयो , इह च कथञ्चित्सत्त्वस्य प्रसिद्धत्वेऽपि सर्वथाऽसत्त्वस्य कुत्राप्यप्रसिद्धतया कथं संशयकोटित्वम्? इति चेन्न। वस्तुतोऽप्रसिद्धस्यापि प्रसिद्धत्वेन ज्ञातस्य संशयविषयत्वसम्भवात्। घटत्वावच्छिन्नसत्त्वस्यैक कोटित्वं सर्वप्रकारावच्छिन्नत्वप्रकारेण सत्त्वस्य चापरं कोटित्वमिति वस्तुन सत्त्वे सर्वप्रकारावच्छिन्नत्वस्यासत्त्वेऽपि न क्षति । एव द्वितीयादिसंशयप्रकारा अप्यूह्या । निरुक्तसंशयेन च घटे वास्तवसत्त्वनिर्णयस्सम्पादनीय इति जिज्ञासोत्पद्यते, जिज्ञासांप्रति सशयस्य कारणत्वात् तादृशजिज्ञासया घट कि स्यादस्त्येवेति प्रश्न , प्रश्ने च जिज्ञासाया हेतुत्वात् । तादृशप्रश्नज्ञानाच्च प्रतिपादकस्य प्रतिपिपादयिषा जायते। प्रतिपिपादयिषयाचोत्तरम्। इत्युक्तप्रणाल्या धर्मसप्तविधत्वाधीन भङ्गाना सप्तविधत्वमिति बोधयितुं सत्यन्तनिवेश इति ध्येयम्। तदुक्तम् , -

शङ्का,–जब दो धर्म कहीं प्रसिद्ध हो तब ही उनका सशयकोटिमें प्रवेश होता है जैसे स्थाणुत्व[1] स्थाणुमें और पुरुषत्व[2] पुरुषमें पृथक् पृथक् प्रसिद्ध है इस हेतुसे उनमे सशय कोटिता है। और '**घटः स्यादस्त्येव न वा**' इसमें कथञ्चित् सत्त्वके प्रसिद्ध होनेपर भी सर्वथा असत्त्वके अप्रसिद्ध होनेसे सशय कोटिता कैसे हो सकती है?। ऐसी शङ्का न करो. क्योंकि वास्तवमें अप्रसिद्धकी भी प्रसिद्धता ज्ञात होनेसे सशय विषयताका सभव है। यहा प्रकृत विषयमें घटत्वाच्छिन्न[3] कथंचित् सत्त्वकी एक कोटि है और सर्व[4] प्रकारावच्छिन्न सत्त्वकी[5] दूसरी कोटि है। इस रीतिसे वस्तुके सत्त्वमें सर्व प्रकारावच्छिन्न असत्त्व होनेमें भी कोई क्षति[6] नहीं है। इसी पूर्व कथित प्रकारसे द्वितीय तृतीय सशयके प्रकारकी स्वय कल्पना कर लेनी चाहिये। अर्थात् जैसे कथञ्चित् घटकी सत्ता तथा सर्वथा घटकी सत्ता इन दोनों कोटिमें सशयकी सभावना है। ऐसे ही कथञ्चित् घटकी नास्तिता तथा सर्वथा घटकी नास्तिता इत्यादि द्वितीय तथा तृतीय संशयको भी स्वयं समझ लेना चाहिये॥ पूर्वोक्त संशयके दर्शानेसे यथार्थ घटका स्वरूप क्या है यह निर्णय अवश्य करना चाहिये, ऐसी जिज्ञासा विवेकी पुरुषको होती है, क्योंकि जिज्ञासाकेप्रति सशयको कारणता है, इस कारण जिज्ञासासे[7] घट कथंचित् है वा सर्वथा है ऐसा प्रश्न होता है, क्योंकि प्रश्नमें जिज्ञासा ही कारण है। इस प्रकारके प्रश्नसे उत्तरदाताको उत्तर देनेकी अभिलाषा उत्पन्न होती है और उसी उत्तर देनेकी अभिलाषासे वह उत्तर देता है॥ इस प्रकार पूर्व कथित रीतिसे धर्मोंके सप्तभेदके आधीन भगोके '**स्यादस्ति**' इत्यादि सप्तभेद ज्ञापनकेलिये लक्षणमें सत्यन्त दल अर्थात् '**प्राश्निक प्रश्नज्ञान प्रयोज्यत्वे सति**' का निवेश किया है. ऐसा जानना चाहिये। ऐसा अन्य आचार्यने भी कहा है।

---

१ स्थाणुपना. २ पुरुषपना. ३ घटत्व धर्मसहित ४ सर्व प्रकारसहित. ५ सत्ता वा होना ६ हानि. ७ जाननेकी इच्छा.

" भङ्गास्सत्त्वादयस्सप्त संशयास्सप्त तद्गताः ।
जिज्ञासास्सप्त सप्त स्युः प्रश्नास्सप्तोत्तराण्यपि ॥ "

'स्यादस्ति घटः' कथंचित् घट है इत्यादि वाक्यमें सत्त्व आदि सप्तभंग इस हेतुसे है कि, उनमें स्थित सशय भी सप्त है और सप्त सशय इसलिये है कि, जिज्ञासाओ[1] के भेद भी सप्त ही है और सप्त जिज्ञासाओंके भेदसे ही सप्त प्रकारके उत्तर भी होते हैं.

नन्विदं सर्वं तदोपपद्यते, यदि धर्माणा सप्तविधत्वमेवेति सिद्धं स्यात्, तदेव न सम्भवति । प्रथम द्वितीयधर्मवत्प्रथमतृतीयादि धर्माणां क्रमाक्रमार्पिताना धर्मान्तरत्वसिद्धेस्सप्तविधधर्मनियमाभावात्, इतिचेन्न ।

शङ्का—यह सब तब ही युक्त हो सक्ता है कि जब, धर्मोंके सात ही भेद सिद्ध हों परन्तु येही संभव नहीं है. क्योंकि प्रथम द्वितीय धर्मके सदृश क्रम तथा अक्रमसे अर्पित प्रथम तृतीय आदि धर्मोंसे सप्त धर्मसे भिन्न अन्य धर्मोंकी सिद्धि होनेसे सात ही प्रकारके धर्म है यह नियम नहीं हो सक्ता, तात्पर्य यह है कि जैसे, 'स्यादस्ति' यहा प्रथम धर्म सत्त्व और 'स्यान्नास्ति' यहां द्वितीय धर्म असत्त्व इन दोनोको क्रमसे लगानेंपर 'स्यादस्तिनास्ति' कथंचित् सत्त्व कथचित् असत्त्व यह तृतीय धर्म हो जाता है ऐसे ही प्रथम तृतीय आदि धर्मोंको क्रम वा अक्रमसे लगानेंसे जैसे 'स्यादस्ति' तथा 'स्यादस्तिनास्ति' इन प्रथम तृतीयको क्रमसे योजन करनेसे 'स्यादस्तिस्यादस्तिनास्ति' कथचित् सत्त्व कथचित् सत्त्वासत्त्व यह एक सत्त्वधर्मसे भिन्न अन्य धर्म हो गया. ऐसे ही तृतीय चतुर्थके योजनसे भी अन्य धर्मकी सभावना है तो धर्मोंके सात ही भेद है,—यह नियम असङ्गत है । ऐसी शङ्का यदि करो तो उसका उत्तर यह है ।

क्रमाक्रमार्पितयो. प्रथमतृतीयधर्मयोर्धर्मान्तरत्वेनाप्रतीते' । स्यादस्तिघट इत्यादौ घटत्वावच्छिन्नसत्त्वद्वयस्यासम्भवात्, मृण्मयत्वाद्यवच्छिन्नसत्त्वान्तरस्य सम्भवेऽपि दारुमयत्वाद्यवच्छिन्नस्यापरस्यासत्त्वस्यापि सम्भवेनापरधर्मसप्तकसिद्धेस्सप्तभग्यन्तरस्यैव सम्भवात् । एतेन–द्वितीय तृतीय धर्मयोः क्रमाक्रमार्पितयोर्धर्मान्तरत्वमिति निरस्तम्,–एकरूपावच्छिन्न नास्तित्वद्वयस्यासम्भवात् ।

क्योंकि,—क्रम वा अक्रमसे अर्पित प्रथम तृतीय धर्मोंकी योजनासे धर्मान्तरकी प्रतीति लोकमें नही है । क्योकि 'स्यादस्ति घटः' इत्यादि वाक्यमें घटत्वावच्छिन्न घटके सत्त्वद्वय असभव है । मृत्तिकामयत्वादि अवच्छिन्न घटके अन्य सत्ताका संभव होनेपर भी उसी समय दारुमयत्व आदि अन्य घटकी असत्ताका भी सभव होनेसे अन्य उसी प्रकारके सात धर्म सिद्ध हो जांयगे. इस हेतुसे अन्य सप्तभङ्गी ही सिद्ध होनेका संभव है न कि सप्त

१ जाननेकी इच्छाओके. २ सात. ३ भङ्ग आदिका सप्त भेद कथन ४ धर्मोंके सप्त भेद. ५ कथञ्चित् घट है ६ घटको अन्यसे पृथक् करनेवाले घटत्व धर्मसहित ७ एक घट विषयमें दो सत्ताका ८ मिट्टीके. ९ काष्ठ आदि रचित

श्रीपरमात्मने नमः

उपोद्घातः ।
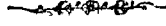
प्रचुरपाण्डित्यपूर्णजैनमतामितग्रन्थेषु सप्तभङ्गीतरङ्गिणीनामापूर्वोऽय जैनतर्कग्रन्थ । अस्य च निर्माता **वीरनामकग्रामवास्तव्य श्रीमदनन्तदेवस्वामिना** प्रियाग्रशिष्यो **विमलदास**नामा दिगम्बरजैन । स च तजानगरे निवसन्नमु ग्रन्थ प्रणीतवान् । एतन्निर्माणकालश्च प्लवङ्गनामसंवत्सरे पुष्यनक्षत्ररविवासरान्वित-वैशाखशुद्धाष्टमीति ग्रन्थान्ते स एव लिखितवान् परन्त्वनेन कस्मिन् विक्रमीयाब्दे खीष्टाब्दे वाऽय ग्रन्थ प्रणीत इति स्पष्ट न प्रतिभाति । अय पण्डितवर कदा कीदृशकुल स्वजनुषालचकारेति निर्णेतु न पारयाम ।

अत्र च जैनमतप्राणभूताना सप्तभङ्गाना प्राधान्यतो व्याख्यानम् कृतम् । सप्तभङ्गप्रवृत्तौ हेतुश्च तत्त्वार्थाधिगमोपायभूतप्रमाणनयात्मकवाक्याना सप्तधैव प्रवृत्ति प्रदर्शिता । प्रथमतश्च सप्तभङ्गीनामनिर्वचन लक्षण-पुरस्सरं कृतम् सप्तविधप्रश्नप्रवृत्तौ हेतुर्हि प्राश्निकसशयाना सप्तधैवोदय प्रतिपादित । सशयसप्तविधत्व हि निखिलजगदैहिकपारलौकिकसशयनिश्चयविषयीभूतधर्म्माणा सप्तधैव प्रवृत्ति प्रदर्शिता। तेचात्र कथञ्चित् सत्वम्, कथञ्चिदसत्व, क्रमार्पितोभयम्, अवक्तव्यत्वम्, कथञ्चित्सत्वविशिष्टावक्तव्यत्वम्, कथञ्चिदसत्वविशिष्टावक्तव्यत्वम्, क्रमार्पितोभयविशिष्टावक्तव्यत्वमिति रूपेणोपन्यस्ता । एतद्धर्म्मप्रतिपादकसप्तभङ्गानि सप्तवाक्यानि चैवेमानि, —

(१) स्यादस्त्येव घट ,
(२) स्यान्नास्त्येव घट ,
(३) स्यादस्ति नास्ति च घट ,
(४) स्यादवक्तव्य एव घट ,
(५) स्यादस्ति च वक्तव्यश्च घट ,
(६) स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घट ,
(७) स्यादस्तिनास्ति चावक्तव्यश्च घट ।

अनेकतर्कै सप्तैव भङ्गाना सङ्ख्या स्थापिता नापि न्यूना न चाप्यतिरिक्ता एतेषा भङ्गानामन्योन्यभेदप्रद-र्शनमपि ग्रन्थकारै सुविस्तरं प्रोक्तम् । निखिलचेतनाचेतनात्मकवस्तुनि सप्तभङ्गा योजयितु शक्या । यथा स्यादस्त्येव घट अत्र यद्यपि स्याद्वादमते घटस्य सत्त्वमिवासत्वमपि स्वरूप तथापि प्रथमभङ्गे सत्वस्य प्राधान्येन भानम् असत्त्वस्यचाप्राधान्येन, तथा च प्रकृते कथञ्चित् सत्वस्य सर्वप्रकाराऽवच्छिन्नसत्वस्य च संशय-कोटिता वर्ततेऽत एवायोगव्यवच्छेदबोधकैवकारेण स्वरूपादिभि प्रथमभङ्गे कथञ्चित् सत्वमेव स्थापितम्। बोधश्च कथञ्चित् घटस्यसमानाधिकरणो य प्रतियोगिव्यधिकरणोऽत्यन्ताभाव तादृशाऽत्यन्ताभावाप्रतियोग्य-स्तित्ववान् घट इति एवमेव द्वितीयभङ्गे असत्वस्य तृतीयभङ्गे क्रमार्पितसत्वाऽसत्वयो प्राधान्यमस्ति, चतुर्थेऽ-वक्तव्यत्वस्य प्राधान्यं पञ्चमे सत्वविशिष्टावक्तव्यत्वस्य षष्ठे चासत्वविशिष्टावक्तव्यत्वस्य, सप्तमे च क्रमयोजित-सत्वासत्वविशिष्टावक्तव्यत्वस्य प्राधान्यमुपन्यस्तम् ।

इय च सप्तभङ्गी प्रमाणसप्तभङ्गी, नयसप्तभङ्गीति भेदेन द्विधोपन्यस्ता । अनन्तरं च सकलादेश' प्रमाण-वाक्य विकलादेशश्च नयवाक्यमित्यादिना प्रमाणनयवाक्याना विकल्पाद्युपन्यस्य सिद्धान्त' प्रदर्शितस्तत्सर्व ग्रन्थत एवावसेयम् ।

प्रथमभङ्गे घटस्य द्रव्यवाचकत्वेन विशेष्यता, अस्तीत्यस्य च गुणवाचकत्वेन विशेषणता [illegible]प्रादितो-क्तबोधानुरोधादित्यवधेयम् ।

अत्रानेकान्तवादे च सर्वं वस्तुजातमनेकान्तात्मकमस्तीति स्वरूपादिभिर्घटस्यास्तित्वमेव नत्वनिष्टासत्त्वादिकमि- [illegible]गितुमवधारणार्थकैवकारप्रयोग स्यादस्त्येव घट इत्यादिरूपेणैतत्खण्डनमण्डनप्रकारश्च सुविस्तरमाचार्येण प्रदर्शितम् । निपातानां च द्योतकवाचकत्वेनोभयात्मकता च प्रदर्शिता । बौद्धाश्चान्यव्यावृत्तिरेव सर्वशब्दवाच्यमित्यवधारणार्थकैवशब्दाभावेपि पररूपादिना व्यावृत्ति स्वत एव सिद्धेत्याशङ्कित त विधिमुखेनैव सर्वत्र शाब्दबोधप्रणाल्या अनुभवगोचरत्वेनानवस्थादोषसद्भावाच्च न तन्मत सङ्गतमिति ॥ त्याख्यातम् । तथाविधविचारानेकान्ताद्यनेकार्थसंभवेऽपि प्रकृतवस्तुनोऽनेकान्तस्वरूपप्रदर्शनार्थम् **स्यादस्त्येव घट** इत्यादिभङ्गेषु तिङन्तप्रतिरूपकनिपातात्मकस्याच्छब्दप्रयोग कृत स चानेकान्तवादेऽप्रौढविनेयाना सौकर्य्येण प्रतिपत्त्यर्थं प्रौढविनेयानां तु वस्तुनोऽनेकान्तस्वभावेन स्याच्छब्दप्रयोगमन्तरापि तादृशार्थप्रतीतेस्तदनावश्यकता प्रदर्शितेत्यवसेयम् ।

अनन्तरं च प्रमाणरूपसकलादेशेन कालात्मस्वपरादिभिर्भेदवृत्त्या अभेदोपचारेण वा नयरूपविकलादेशेन च भेदवृत्त्याभेदोपचारेण घटादिरूपार्थप्रतिपादन कृतम् तत्र च कालादिना सर्वेषामभेद प्रदर्शित । यथा यत्कालावच्छेदेन च घटादावस्तित्व वर्तते तत्कालावच्छेदेनान्याशेषधर्मा अपि तत्रैव सन्ति एवरीत्या कालेनाभेदवृत्तिस्तथैवात्मस्वरूपादिभि प्रतिपादिता । पूर्वोक्तरीत्या पदार्थनिरूपणानन्तर वाक्यार्थनिरूपणम- स्वरूपाद्यवच्छिन्नास्तित्वाश्रय पररूपाद्यवच्छिन्ननास्तित्वाश्रयो घट इत्यादिरूपेण प्रतिपादितम् । तत्पश्चात् केच घटस्य स्वरूपादय केच पटरूपादय इति शङ्कामुपन्यस्य घट इत्याकारकबुद्धौ प्रकारतया भासमानो घटपदशक्यतावच्छेदकीभूतो य सदृशपरिणामलक्षणो घटत्वरूपधर्म स एव घटस्य स्वरूप तदन्यपटत्वादिक पररूपमिति स्वरूपेण घटस्यास्तित्व पररूपेण च नास्तित्वमिति । अथ च पटत्वादिपररूपेणापि घटस्यास्तित्वाङ्गीकारे घटस्य पटात्मकत्वापत्ति स्वरूपेणापि नास्तित्वे खरविषाणवत् शून्यतावाद इत्येवमादिना स्वरूपपररूपस्य बहवो विकल्पा उपन्यस्ता । घटस्य स्वरूपद्रव्यक्षेत्रकालैरस्तित्व पररूपद्रव्यक्षेत्रकालैश्च नास्तित्व प्रतिपादितम् ।

अग्रेच सकलपदार्थाना स्वकीयपरकीयस्वरूपादिचतुष्टयेन व्यवस्थाया स्वरूपादीनामप्यन्यत्स्वरूपादिकमपेक्षितमेवैतेषामप्यन्यदित्यनवस्था तथा च यथावस्तुप्रतीतिव्यवस्था कार्य्येति किं स्वरूपादिनास्तित्वेन पर रूपादिना च नास्तित्वेन किमित्याशङ्क्य वस्तुस्वरूपमेव स्वरूपपररूपाद्यवच्छिन्न सत्वासत्वादिक विषयीकरोतीति निर्णेतु ग्रन्थप्रवृत्तेरन्यथा च नाना निरङ्कुशविप्रतिपत्तीर्निवारयितुमशक्तेरिति समाहितम् ।

अग्रेच केवलान्वयिप्रमेयादिपदार्थेषु स्वपररूपादीनामप्रसिद्धे कथ व्यवस्थेत्याशङ्क्य तत्रापि प्रमेयत्व प्रमेयस्य स्वरूप, घटत्वादिक च पररूप, यद्यपि घटत्वादानामपि प्रमेयत्वमक्षत तथापि तत्र प्रमेयत्व रूपेण तद्रूपता नास्तीति विचार्य्य ग्रन्थकारेण तथा लिखितम् । अथवा प्रमेयत्व प्रमेयस्य स्वरूपम् अप्रमेयत्व च प्रमेयस्य पररूपमिति, यद्यपि प्रमेयत्वाभावरूपा प्रमेयत्वस्याप्रसिद्धिस्तथापि गगनकुसुमशशविषाणादौ चाप्रमेयत्वप्रसिद्धि स्फुटैव तत्र च प्रमाणजन्यप्रमितिविषयताभावेन प्रमेयत्वाभावादिति प्रतिपादितम् ।

अथाग्रे च महासत्वरूपस्य शुद्धद्रव्यस्य सम्पूर्णद्रव्यक्षेत्रकालभावात्मकतया तद्भिन्नत्वेनान्यद्रव्यभावात् कथ तत्र स्वपररूपादिव्यवस्थेत्याशङ्क्य तत्रापि सकलद्रव्यक्षेत्रकालादीना स्वरूपत्व विकलद्रव्यादीना च पररूपत्वमिति सकलद्रव्यक्षेत्रकालाद्यपेक्षयाऽस्तित्व विकलद्रव्यक्षेत्रकालाद्यपेक्षया च नास्तित्वमिति समाहितम् ।

अग्रेचास्तित्वस्य स्वाश्रयत्वेन वास्तविकवस्तुरूपता, नास्तित्वस्य च पराधीनत्वेन वस्तुरूपतेत्यनेकान्तवादे अस्तित्वमिव नास्तित्वमपि वस्तुरूपमिति डिंडिमघोषणा कैमर्थिकेत्याशङ्क्य साधर्म्यवैधर्म्ययोरिवास्तित्वनास्तित्वयोरविनाभाव प्रदर्शित सूक्ष्मबुद्धीना च घटादिस्वरूपाऽवबोधेस्तित्वमिवान्यपदार्थाभावस्यापि प्रतीते अन्यप्रतिषेधाभावे च वस्त्वन्तरभानापत्ते । यद्यपि शशविषाणादिषु नास्तित्वस्यैवावलोकनात् नास्तित्वमस्तित्वमन्तरापि सम्भवतीति नास्तित्वास्तित्वयोरविनाभावो नास्ति तत्कथ नास्तित्वमपि वस्तुरूपमित्याशङ्क्य तत्रापि गोमस्तकादिसमवायित्वेन प्रसिद्धस्य विषाणादे शशादिसमवायित्वेन च तस्य नास्तित्वमिति निश्चय एवमेव मेषादिषु समवायित्वेन प्रसिद्धरोम्ण कूर्मसमवायित्वेन तस्य निषेध इत्यस्तित्वनास्तित्वयोरविनाभावोऽक्षत एवेति ध्येयम् ।

च द्व्या।५

तवादिनां न दोषलेशाऽवका॰।

तृतीयादिभङ्गनिरूपणप्रस्तावना । भङ्गद्वय

स्यादस्ति नास्ति च घट इत्याकारक । घट॰

लक्षणकवाक्यत्व च तल्लक्षणमभिहितम् । तत्र च क्रमशोऽ५

तीति प्रायशो निरूपितमेवेति पूर्वप्रस्तावनादेव बोध्यम् । सहार्पि॰

णमसम्भवीति स्यादवक्तव्य एव घट इति चतुर्थभङ्गप्रवृत्ति प्रदा॰

युगपत्प्रधानतया सत्वासत्वप्रतिपादने शक्त्यभाव एव बीजमिति प्रदर्शित

स्तिनास्तीत्यन्यतरशब्दाप्रयोग एव उचित नानार्थकशब्देषु च प्रत्यर्थं शब्दा ।

च वाक्यानामपि युगपन्नानार्थबोधकता प्रत्याख्यातप्राया । सेनावननगरा॰

समूहस्यैव सेनाशब्दवाच्यतेत्यङ्गीकरणान्न दोषलेशाऽवकाश इति निरूपितम् .

वृक्षप्रासादसमूहस्यैव वाच्यव्यवस्था प्रदर्शिता ।

वृक्षौ वृक्षा इत्यादि द्विवचनबहुवचनान्तप्रत्येकशब्दै कथ द्विबहुवचानार्थबोधकते॰

एकशेषेण जनेन्द्रमते च स्वभावत एव द्विबहुवचनान्तवृक्षादिशब्दा द्वित्वबहुत्वविशि

बोधयन्तीति समाहितम् । तत्रापि प्रधानभावेन प्रथमतो वृक्षत्वादिजात्यवच्छिन्नार्थान्

लिङ्गसङ्ख्याद्यन्वये च गौणतया द्वित्वविशिष्टान् बोधयन्तीति समाहितमत एवैक पद

नेकार्थबोधकमिति न नियमभङ्गाप्रसक्ति । प्रमाणवाक्यस्य प्रधानताऽशेषधर्मात्मकवस्तुप्रकाशकता

भिरभेदवृत्त्या अभेदोपचारेण वा द्रव्यपर्य्यायनयार्पणविधयैव सकलार्थबोधकतेत्येकवाक्यस्या॰

भावेनानेकार्थप्रतिपादकतेत्यभिहितप्रायम् ।

सत्वासत्वे इत्यादि द्वन्द्वस्थलेऽपि क्रमेणैव गुणप्रधानभावेनार्थप्रत्यायनम् अन्यथाऽभ्यर्हितचेत्याद्यनुशासन॰

पत्ति स्फुटैव । अथ च प्राधान्येनोभयपदार्थबोधनसामर्थ्याङ्गीकारेऽपि द्वन्द्वस्य प्रधानतयाऽस्तित्वनास्ति

त्वोभयाऽवच्छिन्नधर्मिणि प्रतिपादकशब्दाभावाद्घटादीनामवक्तव्यताक्षतैवेति निरूपितम् । अथ च सद-

गतत्वविशिष्ट वास्तित्वत्वादिपदेन द्वन्द्वगर्भतत्पुरुषेण सदसत्वविशिष्टपदेनोभयावच्छिन्नस्य वस्तुनो बोध-

सम्भवेन कथ प्रधानतया सत्वासत्वबोधक पद नास्तीति नियम । तत्र सदसत्वविशिष्टपदार्थस्यैव प्राधान्य

न तु सदसतो तयोश्चाप्राधान्यमेवात एवोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष इति वचन सगच्छत इति ।

अवक्तव्यता च प्रकृते न सर्वथाऽत एव स्याच्छब्दप्रयोगोऽन्यथा अवक्तव्यघट इत्यभिधानेऽस्तित्वादि-

धर्ममुखेनापि प्रथमादिभङ्गैर्घटस्य वक्तव्यतैव स्यादिति स्याच्छब्देन कथचिदवाच्यताप्रतीति तथा चास्ति-

त्वादिरूपेण वक्तव्यतावान् घट किन्तु प्रधानीभूतसत्वासत्वोभयधर्मरूपेण युगपदवक्तव्य इति चतुर्थभङ्ग-

सिद्धान्तपरिपाटी ।

अथाग्रेन्तिमभङ्गत्रयमाचार्य्येण व्यस्तसमस्तद्रव्यपर्य्यायावाश्रित्यापादित । तत्र द्रव्यस्य व्यस्तत्वे द्रव्यपर्याययोश्च

सहार्पितत्वे स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घट इति पञ्चमभङ्गप्रवृत्तिरुपन्यस्ता । वाक्यलक्षणादिक च मूलग्रन्थ-

व्याख्यानेऽभिहितम् ।

एव पर्य्यायस्य व्यस्तत्वे द्रव्यपर्याययोश्च समस्तत्वे स्यान्नास्ति चावक्तव्य एव घट इति षष्ठभङ्गप्रवृत्ति

तत्र पृथक्पर्यायविवक्षया नास्तित्व प्राधान्येन मिलितद्रव्यपर्य्याययोजनया चावक्तव्यत्वमिति । पञ्चमभङ्गे हि

पार्थक्येन द्रव्यत्वयोजनयास्तित्व मिलितप्रधानभूतद्रव्यपर्य्यायोभययोजनया युगपदवक्तव्यत्वमित्यनयोर्भेद ।

दाना खण्डनमुपन्यस्तम् २.

सप्तभङ्गीप्रवृत्त्यप्रवृत्तिभ्या दोषमुप । ।

.कान्तो मिथ्यैकान्त सम्यगनेकान्तो मिथ्यान ।

...पे स्यादेकान्त. स्यादनेकान्त स्यादुभयः स्यादव

अनयैव दिशा नित्यत्वानित्यत्वैकत्वानेकत्वादिधर्मेषु चैवमेव...

.लवस्तुव्यापिनोऽनङ्गीकारे च सर्व वस्तुजात स्यादेक स्यादनेकमिति

. सत्सामान्यस्य जैनसिद्धान्तेऽभावादिति शङ्कितम् । तत्तद्व्यक्त्यात्मना-

कत्वस्वीकरणात्समाहितम् ।

ऽजीव इति मूलभङ्गद्वयम् । तत्रोपयोगात्मना अय जीव प्रमेयत्वाद्यात्मना चाय-

प्रदर्शिता । अत्र स्वामिभट्टाकलङ्कदेवाना वचनमपि प्रमाणतयोपन्यस्तम् । यथा, —

.त्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मक ।

नदर्शनतस्तस्माच्चेतनाऽचेतनात्मक ॥ १ ॥ इति

अ तदेवानित्य तदेवैकम् तदेवानेकम् स एव जीव स एवाजीव इत्यादि रूपनिरूपणाद-

त्रमित्याशङ्क्य घृतादिलक्षणाभावाद् वस्तुनश्च तादृशस्वभाव इति रीत्या समाहितम् । एवमेव

.भावात्सशयादिजनकमपि नानेकान्तवाद इति समाहितम् ।

च विरोधवैयधिकरण्यानवस्थासकरव्यतिकरसशयाप्रतिपत्त्यभावरूपा अष्टौ दोषा अनेकान्तवादे

.ङ्क्य प्रकृते विरोधादयो न सन्ति विरोधो हि वस्त्वनुपलम्भसाध्य कथचित्प्रतीयमाने वस्तुनि

.पेक्षया विवक्षितयो सत्वासत्वयोर्नास्ति विरोध इत्यादि युक्त्या वध्यघातकभाव , सहानवस्थिति ,

.द्वयप्रतिबन्धक भावश्चेति त्रिविधविरोधमध्ये कस्याप्यत्रानेकान्तवादेस्तित्वाभाव इति रीत्या च समाहितम्।

.नैव रीत्या सत्वासत्वयो प्रधानगुणभावेन सर्वत्र प्रतीतेर्वैयधिकरण्यादिदोषा अपि निरस्ता ।

अग्रे चानेकान्तवादे साङ्ख्यादिवादिनामानुकूल्य प्रदर्शितम् । साङ्ख्यास्तावत्सत्वतमोरजसा साम्यावस्था-

प्रधानमिति वदन्तोऽन्योन्यविरोधिधर्माणामेकत्र सम्मेलनेनानेकान्तवाद स्वीचक्रु । नैयायिका अपि द्रव्यत्वा-

दिक सामान्यविशेषरूपमङ्गीकुर्वन्तोऽनेकान्तवादे सम्मतिमददन् । सौगता अपि मेचक (मणिविशेष) ज्ञान-

मेकमनेकाकार कथयन्तोऽनेकान्तवाद स्वीचक्रुरित्यादि रीत्या चार्वाकमीमासादीनामपि स्वमतानुकूल्य

प्रदर्शितम् ।

अस्य च ग्रन्थस्यार्य्यभाषाऽनुवादकरणे जैनवशाऽवतसश्रीश्रेष्ठिवर्य्यरेवाशकरजगजीवनमहाशयसम्बधि

श्रीरायचन्द्रजैनशास्त्रमालाप्रबन्धकर्त्ता श्रीमनसुखलालरविजीभाईमहाशयेनाज्ञप्तोऽहम । विशिष्टविदुषा सविधे

चेय सुभृश विज्ञप्तिर्यत्सति प्रमादे क्षन्तव्या गा अपेयमिति शम् ।

विदुषां चरणसरोरुहसेवी,—

प्रयागमण्डलान्तर्गतहरिपुरग्रामनिवासी मुरादाबादस्थगवर्णमेण्टनार्मलपाठशालाध्यापक

महामहोपाध्याय श्री ६ दामोदरशास्त्रिणामन्तेवासी

आचार्य्योपाधिधारि**ठाकुरप्रसादशर्म्मा द्विवेदी ।**

क पाडि

ग्रन्थ है । इस ग्रन्थके प्रणेता वीरग्राम

श्री विमलदास नाम दिगम्बर जैन हैं । त

परन्तु इसका निर्माणकाल निश्चित नहीं होता । यद्यपि

सवत्सर–पुष्यनक्षत्र–रविवार–वैशाख–शुद्धाष्टमी को यह ग्र

ख्रीष्टाब्दमें यह रचा गया सो निश्चय नहीं होता, कदाचि

पण्डितवर कब और किस कुलमें उत्पन्न हुए, यहभी निर्णय नहीं

इस ग्रन्थमे जैनमतके प्राण वा सर्वस्वभूत जो सप्तभङ्ग है, उनक

और सप्तभङ्गोंकी प्रवृत्तिमे हेतु तत्त्वार्थज्ञानके उपायभूत प्रमाण तथा नय

प्रवृत्ति दर्शाई गई है । और सात ही प्रकारके प्रश्नवाक्योके प्रवृत्त होनेमें स

सप्तप्रकारके सशय होनेमें सम्पूर्ण जगत्के ऐहिक तथा पारलौकिक सशय निः

प्रवृत्ति दिखाई गई है । वे सप्तविध धर्म ये है, —कथञ्चित् सत्व १, कथञ्चित्

कथञ्चित् अवक्तव्य ४, कथञ्चित् सत्वविशिष्ट अवक्तव्यत्व ५, कथञ्चित् अस

और क्रमार्पित उभय विशिष्ट अवक्तव्यत्व ७ । इन सातो धर्मोंके प्रतिपादक जो

सप्तभङ्ग कहते है । और सप्तभङ्गोका समूह वा समाहार जो है, उसीको सप्तभङ्गी

स्वरूप ग्रन्थकी टीका तथा सस्कृत उपोद्घात मे हम दर्शा चुके है, यहा पुन लिखके पु

समय खोना नहीं चाहते । सातो भङ्गोका स्वरूप दर्शानेके पश्चात् ग्रन्थकारके सप्तभङ्गीवा

भङ्गोकी सात ही सख्या हो सक्ती है, उससे न्यूनाधिक नहीं हो सक्ती, यह स्थापित किय

भङ्गोका परस्पर जो भेद है उसको पूर्णरूपसे दर्शाया है ।

न्त् प्रथम भङ्ग अर्थात् **'स्यादस्त्येव घटः,** 'कथञ्चित् घट है, से लेकर सप्त

तर्कोंसे व्याख्या की है । और इन भङ्गोसे जिस प्रकार अर्थबोध होता है

र नयसप्तभङ्गी इन दो भेदोमे सप्तभङ्गीके दो भेद दर्शाये है ।

ज्ञापक प्रमाणवाक्य और विकलादेश अर्थात् एकदेश पदार्थ स्व

श प्रमाणवाक्य विकलादेश नयवाक्य इत्यादि अनेक विकल्पोंको

थम भङ्गमे (स्यादस्त्येव घट) द्रव्यवाचक मानकर घटको विशे

णरूपसे वर्णन किया है । और जैन–सिद्धान्त अनेकान्तवाद

र, अनुमान तथा आगमसे अविरुद्धरूप एक वस्तुमें अस्तित्व नास्ति

,वही जैनमतका अनेकान्तवाद है । तो इस प्रकारके अनेकान्तवादमे

व है न कि अनिष्ट असत्वादिक, इस बातको द्योतन करनेकेलिये

व' इस निश्चयबोधक निपातका प्रयोग किया है । इस प्रकारसे

नहीं इस विषयमें ग्रन्थकारने बहुत खडन मडन किया है, और

यमे अकुशल शिष्योंकेअर्थ एवकार शब्दका प्रयोग उचित है

धर्मोंसे पृथक् धर्म ॥ इस प्रकार प्रथम तृतीय धर्मोंकी योजनासे अन्य धर्मकी सिद्धिके खण्डनसे क्रम तथा अक्रमसे अर्पित द्वितीय तृतीय धर्मोंकी योजनासे अन्य धर्मसिद्धिका भी खण्डन हो गया । यथा एक पदार्थ विषयक दो सत्त्वके सदृश एक रूपावच्छिन्न एक पदार्थ विषयक दो नास्तित्वका असभव है। जैसे एकधर्मिक काष्ठमय घटके सत्ताका अभाव होनेपर उससे भिन्न मृत्तिकादिमय घटकी सत्ताका भी सभव है ॥

नन्वेवं- प्रथमचतुर्थयोर्द्वितीयचतुर्थयोस्तृतीयचतुर्थयोश्च सहितयो कथं धर्मान्तरत्वम् अवक्तव्यत्वं हि सहार्पितास्तित्वनास्तित्वोभयम्, तथा च यथा क्रमार्पितास्तित्वोभयस्मिन्नस्तित्वस्य योजनं न सम्भवति, अस्तित्वद्वयाभावात्, तथा सहार्पितोभयस्मिन्नपीतिचेन्न। यतोऽवक्तव्यत्व सहार्पितोभयमेव न किन्तु, सहार्पितयोरस्तित्वनास्तित्वयोस्सर्वथा वक्तुमशक्यत्वरूप धर्मान्तरमेव, तथा च सत्त्वेनसहितमवक्तव्यत्वादिक धर्मान्तरं प्रतीतिसिद्धमेव।

शङ्का,–प्रथम चतुर्थ, द्वितीय चतुर्थ तथा तृतीय चतुर्थ धर्मोंकी साथ योजनासे धर्मान्तरकी सिद्धि कैसे होती है ' क्योंकि प्रथम धर्मोंकी योजनासे स्यादस्ति अवक्तव्यश्च इस पञ्चमभङ्गकी सिद्धि होती है । यहापर अवक्तव्यत्व सह अर्पित **'स्यादस्ति'** और **'स्यान्नास्ति'** एतत् उभयरूप होगा तो इस प्रकारसे जैसे क्रमसे अर्पित अस्तित्वद्वयमें दूसरे अस्तित्वका कुछ प्रयोजन नही है। क्योकि एक पदार्थ विषयक दो सत्त्वका असभव है। ऐसे ही साथ अर्पित **'अस्तित्वनास्तित्व'** इस उभयरूपमें नास्तित्व भी नहीं रह सकता क्योकि जहा एक धर्मविषयक नास्तित्व है वहा अन्य अस्तित्वका भी सभव है ऐसी शङ्का नही कर सकते हो । क्योकि अवक्तव्यत्वके साथ योजित **'अस्ति नास्तित्व'** उभयरूपही नही है। किन्तु सह अर्पित अस्तित्व नास्तित्व इन दोनो धर्मोंका सर्वथा कथन करनेको अशक्यत्वरूप धर्मान्तर है क्योकि एक ही पदार्थके विषयमें साथ ही अस्तिता और नास्तिताका कथन नही हो सकता। इस प्रकार सत्त्वके साथ अवक्तव्यत्व आदि धर्मान्तर अनुभवसिद्ध ही है।

प्रथमे भङ्गे सत्त्वस्य प्रधानभावेन प्रतीति', द्वितीये पुनरसत्त्वस्य, तृतीये क्रमार्पितयोस्सत्त्वासत्त्वयो, चतुर्थेत्ववक्तव्यत्वस्य, पञ्चमे सत्त्वविशिष्टावक्तव्यत्वस्य, षष्ठे चासत्त्वविशिष्टावक्तव्यत्वस्य, सप्तमे क्रमार्पितसत्त्वासत्त्वशिष्टावक्तव्यत्वस्येति विवेक'। प्रथमभङ्गादावसत्त्वादीनां गुणभावमात्रं, न तु प्रतिषेध ।

अब प्रथम भङ्गमें अर्थात् **'स्यादस्त्येव घटः'** सत्त्वकी प्रधानतासे प्रतीति होती है. तथा द्वितीय **'स्यान्नास्त्येव घटः'** भङ्गमें असत्त्व अर्थात् असत्ताकी प्रतीति प्रधा-

१ स्यान्नास्त्येव घट. स्यादस्ति नास्ति च घट २ स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्य एव ३ स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव ४ स्यादस्तिनास्ति च स्यादवक्तव्य एव ५ कथचित् है और अवक्तव्य है ६ साथ. ७ योजित ८ दो सत्व ९ पूर्वोक्त रीतिके अनुसार १० योजित ११ साथ योजित सत्ता तथा असत्ता १२ सत्ता १३ उभयरूपसे भिन्न धर्म १४ कथचित् घट है १५ सत्ता १६ अनुभव १७ कथचित् घट नहीं है

२

नतासे है। तृतीय **'स्यादस्ति नास्ति च घटः'** भङ्गमें क्रमसे योजित सत्त्व असत्त्वकी प्रधानतासे प्रतीति है। क्योंकि किसी अपेक्षा घटका अस्तित्व और किसी अपेक्षासे नास्तित्वका भी अनुभव होता है। तथा चतुर्थमें अवक्तव्यत्वकी, पञ्चमें सत्तासहित अवक्तव्यत्वकी, षष्ठमें असत्तासहित अवक्तव्यत्वकी, और सप्तमभङ्गमें क्रमसे योजित सत्ता तथा असत्तासहित अवक्तव्यत्वकी प्रधानतासे प्रतीति होती है, इस प्रकार सप्तभङ्गोंका विवेक जानना चाहिये। प्रथम भङ्गसे **'स्यादस्त्येव घटः'** आदिसे लेके कई भङ्गोंमे जो असत्त्व आदिका भान होता है उनकी गौणता है न कि निषेध. क्योंकि जब कथचित् घटकी सत्ता है ऐसा कहा गया तब कथचित् असत्ताका भी भान होता है। परन्तु असत्ताकी गौणता और सत्ताकी प्रधानता है ऐसे ही आगेके भङ्गोंमें भी जिस धर्मको कहें, उसकी प्रधानता और उससे विरुद्धकी गौणता समझनी योग्य है॥

ननु--अवक्तव्यत्वं यदि धर्मान्तरं तर्हि वक्तव्यत्वमपि धर्मान्तरं प्राप्नोति, कथं सप्तविध एव धर्म? तथाचाष्टमस्य वक्तव्यत्वधर्मस्य सद्भावेन तेन सहाष्टभङ्गी स्यात्, न सप्तभङ्गी,--इति चेन्न।

शका:--जैसे अवक्तव्यत्वके साथ योजित अस्तित्व नास्तित्व धर्मोंको कथन करनेमें सर्वथा अशक्यत्वरूपता है ऐसेही वक्तव्यत्वभी धर्मांतर हो सकता है तो इस रीतिमे अष्टम वक्तव्यत्वरूप धर्मके होनेसे अष्टभंगी नय कहना उचित है नकि सप्तभगी? ऐसी शंका नहीं हो सकती॥

सामान्येन वक्तव्यत्वस्यातिरिक्तस्याभावात्। सत्त्वादिरूपेण वक्तव्यत्वं तु प्रथमभङ्गादावेवान्तर्भूतम्। अस्तु वा वक्तव्यत्वं नाम कश्चन धर्मोऽतिरिक्त, तथापि वक्तव्यत्वावक्तव्यत्वाभ्यां विधिप्रतिषेधकल्पनाविषयाभ्यां सत्त्वासत्त्वाभ्यामिव सप्तभङ्ग्यन्तरमेव प्राप्नोतीति न सत्त्वासत्त्वप्रमुखसप्तविधधर्मव्याघात'। तथा च धर्माणा सप्तविधत्वात्तद्विषयसंशयादीनामपि सप्तविधत्वमिति सप्तभङ्ग्या अधिकसंख्याव्यवच्छेदस्सिद्ध।

क्योंकि सामान्यरूपसे वक्तव्यत्व भिन्न धर्म नही है और सत्त्व आदिरूपसे वक्तव्यत्व प्रथम भङ्गादिमें अन्तर्गतही है और वक्तव्यत्वभी कोई पृथक् धर्म मानो तोभी सत्त्वअसत्त्वके समान विधि प्रतिषेध कल्पनाको विषय करनेवाले वक्तव्यत्व तथा अवक्तव्यत्व धर्मोंसे अन्य सप्तभङ्गी ही सिद्ध होगी। इस रीतीसे सत्त्व असत्त्व आदि सप्त प्रकारके धर्मका व्याघात नहीं हुआ। इससे यह सिद्धान्त हुआ की धर्मोंके सात भेद होनेसे उनके विषयभूत सशय जिज्ञासा तथा प्रश्नादिकभी सप्तभेदसहित है इस कारणसे सप्तभङ्गीकी अधिक संख्याका निराकरण हुआ॥

नन्वेवं रीत्याऽधिकसख्याव्यवच्छेदेऽपि न्यूनसंख्याव्यवच्छेद कथ सिद्ध्यति? तथाहि-

---

१ कथचित् नहीं है २ सत्ता ३ असत्ता ४ अनुभव. ५ कथचित् घट है ६ असत्ता ७ अप्रधानता नकि निषेध ८ स्यादस्त्येव ९ सात प्रकारके

यदि घटादावस्तित्वप्रमुखास्सप्त धर्माः प्रामाणिकास्स्युः, तदा तद्विषयसंशयातिक्रमेण सप्तभङ्गी सिद्ध्येत् । तदेव न, सत्त्वासत्त्वयोर्भेदाभावात् । यत्स्वरूपेण सत्त्वं तदेव पररूपेणासत्त्वं । तथा च न प्रथमद्वितीयभङ्गौ घटेते । तयोरन्यतरेणैव गतार्थत्वात् । एवं च तृतीयादिभङ्गाभावात्कुतस्सप्तभङ्गी ? -इति चेत् ।

कदाचित् यह शङ्का करोकि–इस रीतिसे सप्त संख्यासे अधिक संख्याका [1]व्यवच्छेद सिद्ध होनेपरभी न्यून संख्याका निराकरण कैसे हो सकता है ? इस शङ्काका निरूपण ऐसे है कि यदि घट आदि पदार्थोंमें [2]सप्त धर्म [3]प्रामाणिक हों तो उनके विषयभूत संशय आदिके अतिक्रमसे सप्तभङ्गी सिद्ध हो ? परन्तु यही नहीं सिद्ध होता. अर्थात् सप्तधर्म प्रमाणिक नहीं होते । क्योंकि सत्त्व तथा असत्त्वका भेद नहीं है । इसका कारण यह है कि जो पदार्थ जैसे घट, अपने रूपसे सत्त्वरूप है वही [4]पर पट आदि रूपसे असत्त्वभी है । इस प्रकार प्रथम **'स्यादस्त्येव'** तथा द्वितीय **'स्यान्नास्त्येव'** दो धर्म नहीं घटित हो सकते । इन दोनोंमेंसें अर्थात् सत्त्व अथवा असत्त्व एकमें दूसरा गतार्थ है । सत्त्व मानो तो असत्त्वकी आवश्यकता नहीं है और असत्त्व मानो तो सत्त्वकी आवश्यकता नहीं है इस प्रकारसे तृतीय [5]आदि भङ्गोंके अभावसे सप्तभङ्गी कैसे और कहांसे सिद्ध हो सकती है ? क्योंकि जब स्वरूपसे जो सत्ता है वही अन्यरूपसे असत्ता है तब **'स्यादस्ति नास्ति च'** कथंचित् सत्त्व कथंचित् असत्त्व कहनेकी क्या आवश्यकता है ? यदि ऐसी शङ्का करो तो—

अत्रोच्यते । स्वरूपाद्यवच्छिन्नमसत्त्वमित्यवच्छेदकभेदात्तयोर्भेदसिद्धेः । अन्यथा स्वरूपेणेव पररूपेणापि सत्त्वप्रसङ्गात् । पररूपेणेव स्वरूपेणाप्यसत्त्वप्रसङ्गाच्च ।

इसका उत्तर यह है.–क्योंकि स्वरूप आदि अवच्छिन्न सत्त्व है और पररूप आदि अवच्छिन्न असत्त्व पदार्थ यहा सत्त्व असत्त्वसे विवक्षित है । इस प्रकार स्वरूपादित्व और पररूपादित्व इन दोनो [6]अवच्छेदक धर्मोंके भेदसे सत्त्व तथा असत्त्व इनका भेद सिद्ध है । यदि ऐसा न हो तो स्वरूपसे सदृश पररूपसे सत्त्वका प्रसङ्ग हो जायगा । और इसी रीतिसे पर रूपके असत्त्वके तुल्य [7]स्वरूपसेभी असत्त्वका प्रसङ्ग हो जायगा. और अवच्छेदक भेद माननेसे दोनोंका भेद स्पष्ट ही है ।

किं च सत्त्वं हि वृत्तिमत्त्वं, भूतले घटोऽस्तीत्यादौ भूतलनिरूपितवृत्तित्ववान्घट इति बोधात् । असत्त्वं चाभावप्रतियोगित्वम्, भूतले घटो नास्तीत्यादौ भूतलनिष्ठाभावप्रतियोगी घट इति बोधात् । तथा च सत्त्वासत्त्वयोस्स्वरूपभेदोऽक्षत एव ।

और यह भी है कि सत्त्व [8]वृत्तिमत्त्वरूप होता है । जैसे **'भूतले घटोऽस्ति'** यहांपर भूतल निरूपित जो वृत्तिता तादृश [9]वृत्तितावान् घट' ऐसा शाब्दबोध होता है । और असत्त्वके अभावका [10]प्रतियोगित्वरूप होता है. जैसे **'भूतले घटो नास्ति'** पृथ्वीपर घट नही

१ निराकरण वा दूरीकरण २ सात ३ प्रमाणसिद्ध. ४ अन्य ५ स्यादस्तिनास्ति ६ पृथक् करनेवाले ७ अपने रूप ८ वृत्तितासम्बन्धसे पदार्थमें अन्वयवाला ९ पृथ्वीपर घट है. १० वृत्तितासहित. ११ न्यायशास्त्रकी रीतिसे जिस पदार्थका अभाव वा असत्त्व कहते है वह पदार्थ उस अभावका प्रतियोगी होता है.

है इत्यादि प्रयोगोंमें [1]भूतलनिष्ठ जो अभाव उसका प्रतियोगी घट ऐसा शाब्दबोध होता है। तात्पर्य यह है कि **'भूतले घटोऽस्ति'** इत्यादिमें सत्त्व वृत्तिता सम्बन्धसे घटमें अन्वित है। और **'भूतले घटो नास्ति'** यहा अभावका प्रतियोगिता सम्बन्धसे घटमें अन्वय है । इस प्रकार सत्त्व तथा असत्त्वका स्वरूपभेद पूर्ण रूपसे है।

अपि च--ये त्रिरूपं हेतुमिच्छन्ति सौगतादय'। ये वा पञ्चरूपमिच्छन्ति नैयायिकादय, तेषामुभयेषामपि हेतोस्सपक्षसत्त्वापेक्षया विपक्षासत्त्वं भिन्नमेवाभिमतं; अन्यथा स्वाभिमतस्य त्रिरूपत्वस्य पञ्चरूपत्वस्य वा व्याघातात् इति।

और भी जो हेतुकी त्रिरूपता बौद्धमतावलम्बी मानते है--और जो नैयायिक पञ्चरूपता मानते है उन दोनोंकोभी हेतुकी सपक्षमें सत्त्वकी अपेक्षासे विपक्षमें असत्त्व भिन्नही अभीष्ट है। यदि ऐसा न माने तो अपने २ मतमें स्वीकृत त्रिरूपता तथा पचरूपताकी हानि होगी। पक्षधर्मता, सपक्षे सत्त्व, विपक्षे असत्त्व, ये तीन हेतुरूप बौद्धमतानुयायी मानते है। जैसे **'पर्वतो वह्निमान् धूमात्'** धूमदर्शनसे ज्ञात होता है कि पर्वतमें अग्नि है। **'धूमात्'** यह पञ्चम्यन्त पद हेतु है उसकी [2]पक्षधर्मता है [3]सपक्ष महानसमेंभी धूमका सत्त्व है। और विपक्ष जलह्रद [4]आदिमें धूमका असत्त्वभी है । और नैयायिक तीन ऊपर कहेहुयेसे अधिक अबाधित विषयता तथा असत् प्रतिपक्षता ये दो रूप हेतुके और मानते है । इनमेंसे [5]साध्यसे विपरीत निश्चय करानेवाले प्रबल प्रमाणका अभाव जो है उसको अबाधित विषय कहते है। जैसे पर्वतमें साध्यभूत अग्निके विपरीत निश्चय करानेवाला [6]प्रबल प्रमाण प्रत्यक्ष नहीं है. क्योंकि धूम देखनेके पश्चात् यदि पर्वतमें जाओ तो अग्नि अवश्य मिलेगी। इससे धूमरूप हेतुका विषय [7]प्रबल प्रमाणसे बाधित नहीं है। इस लिये [8]यह हेतु अबाधित विषय है। और उसी प्रकार साध्यसे विपरीत निश्चय करानेवाले [9]समबल प्रमाणकी शून्यता जिस हेतुको हो उसको असत्प्रतिपक्ष हेतु कहते है। अर्थात् जिसके साध्यसे विरुद्ध साध्य सिद्ध करनेवाला प्रतिद्वन्द्वी हेतु न हो सो यहा पर्वतमें अग्निसे विरुद्ध अग्निके अभावका साधक कोई अनुमानादि प्रमाण नहीं है इस कारण धूमरूप हेतु असत्प्रतिपक्षी है। इन दोनो अर्थात् बौद्ध और नैयायिकको अभीष्ट [10]सपक्ष सत्त्व तथा विपक्षासत्त्वरूप हेतुके दूसरे तथा तीसरे अङ्गमें यदि सपक्षसत्त्वकी अपेक्षा विपक्षमें असत्त्वको भिन्न न मानेंगे अर्थात् सत्त्वअसत्त्वको एकरूपही मानेंगे तो बौद्धका अभीष्ट हेतुकी [11]त्रिरूपता और नैयायिकको अभीष्ट पञ्चरूपता सिद्ध नहीं होगी क्योंकि सत्त्व असत्त्व एक मानेसे एकमें दूसरा गतार्थ होनेसे एक अङ्ग जाता रहेगा. इस लिये उनके सिद्धान्तमेंभी सत्त्व और असत्त्वका भेद सिद्ध हो गया॥

---

१ भूतलपर रहनेवाला २ पक्षरूप पर्वतमे वृत्तिरहना ३ रसोईके घर ४ तडाग आदि ५ अग्निआदि ६ अनुमानसे प्रबल ७ प्रत्यक्ष ८ धूम. ९ अनुमान वा आगम १० समान पक्ष महानसआदिमे हेतुकी सत्ता और विपक्ष महा ह्रदादिमें हेतुकी असत्ता ११ तीन रूपता

अथैवमपि कथञ्चित्सत्त्वापेक्षया क्रमार्पितोभयस्य को भेद? न हि प्रत्येकघटपटापेक्षया घटपटोभयं भिन्नम्–इति चेन्न;

शङ्का –अब कदाचित् यह कहो कि कथञ्चित् सत्त्वकी अपेक्षा क्रमसे योजित सत्त्व असत्त्व कैसे भिन्न हो सकते है? अर्थात् जैसा कथंचित् सत्त्वका रूप है वैसाही क्रमसे योजित सत्त्वासत्त्वमेंभी सत्त्वका रूप है तो क्रमयोजित उभयके सत्त्वका कथञ्चित् सत्त्वकी अपेक्षासे क्या भेद है? क्योंकि प्रत्येक[1] घटपटकी अपेक्षासे क्रमयोजित घट पट उभयमें घट पट भिन्न नही है। ऐसी शङ्काभी युक्त नहीं है॥

प्रत्येकापेक्षयोभयस्य भिन्नत्वेन प्रतीतिसिद्धत्वात्। अतएव–प्रत्येकघकारटकारापेक्षया क्रमार्पितोभयरूपं घटपदमतिरिक्तमभ्युपगम्यते सर्वै प्रवादिभि। अन्यथा प्रत्येकघकाराद्यपेक्षया घटपदस्याभिन्नत्वे घकाराद्युच्चारणेनैव घटपटज्ञानसम्भवेन घटत्वावच्छिन्नोपस्थितिसम्भवाच्छेषोच्चारणवैयर्थ्यमापद्येत। अतएव प्रत्येकपुष्पापेक्षया मालाया कथञ्चिद्भेदस्सर्वानुभवसिद्ध। इत्थं च कथञ्चित्सत्त्वासत्त्वापेक्षया क्रमार्पितोभयमतिरिक्तमेव।

क्योंकि प्रत्येककी अपेक्षासे उभयरूप समुदायका भेद अनुभवसिद्ध है। इस हेतुसे प्रत्येक[2] घकार तथा टकारकी अपेक्षासे क्रमसे योजित घकार टकार एतत् उभय समुदायरूप घट इस पदको सब वादियोंने भिन्न माना है। और यदि प्रत्येक घकार तथा टकार आदिकी अपेक्षासे घट पदको अभिन्न मानो तो केवल घकारादिके ही उच्चारणसे घटपदके ज्ञानके सम्भव होनेमे घटत्व अवच्छिन्न उपस्थितिका संभव है तो शेषका[3] उच्चारण व्यर्थ होगा। इसी हेतुसे प्रत्येक पुष्पकी अपेक्षासे मालाका कथञ्चित् भिन्नरूपसे अनुभव सर्वजनप्रसिद्ध है. इस प्रकार माननेसे कथञ्चित् सत्त्वकी अपेक्षा क्रमार्पित उभयरूप भिन्नही है॥

स्यादेतत्, क्रमार्पितोभयापेक्षया सहार्पितोभयस्य कथ भेद? क्रमाक्रमयोश्शब्दनिष्ठत्वेनार्थनिष्ठत्वाभावात्। न हि घटादौ क्रमार्पितसत्त्वासत्त्वोभयापेक्षयाऽक्रमार्पितसत्त्वासत्त्वोभयमतिरिक्तमस्ति। घटपटोभयाधिकरणे भूतले क्रमार्पितघटपटोभयमेक सहार्पितघटपटोभय चापरमिति न केनाप्यनुभूयते।

अस्तु कथञ्चित् सत्त्वका क्रमसे योजित उभयरूपका भेद सिद्धभी हो परन्तु क्रमसे योजित सत्त्व असत्त्व उभयरूपकी अपेक्षासे सह[4] योजित सत्त्व असत्त्व इस उभयरूपका भेद कैसे सिद्ध हो सकता है? क्योकि सत्त्व असत्त्वके क्रम वा अक्रम शब्दनिष्ठ[5] है अर्थनिष्ठ[6] नहीं है। सत्त्व असत्त्व इनकी साथ योजना करो वा क्रमसे, रहेंगे तो सत्त्व असत्त्व येही। इस हेतुसे क्रमसे अर्पित सत्त्व असत्त्व इस उभयरूपकी अपेक्षासे साथ अर्पित इस उभय रूपका भेद नहीं सिद्ध हो सकता। क्योकि घट आदि पदार्थमें क्रमसे अर्पित सत्त्व असत्त्व उभयरूपकी अपेक्षासे अक्रमसे[7] अर्पित सत्त्व असत्त्व यह उभयरूप भिन्न नही है। घट और पट इन दोनोके आधारभूत भूतलमें क्रमसे योजित घट पट यह उभयरूप और साथ

१ अलग अलग २ पृथक एक एक ३ घकारादिसे शेषभूत टकारादिका उच्चारण ४ साथ ५ शब्दमे रहनेवाले ६ अर्थमें रहनेवाले ७ साथ

अर्पित घट पट यह उभयरूप अन्य २ हैं, यह अनुभव किसीकोभी नहीं होता । क्योंकि क्रमसे योजना करो वा साथ, पदार्थ वही घट पट उभयरूप दोनों दशामें है ।

अथ क्रमार्पितसत्त्वासत्त्वोभयापेक्षयाऽक्रमार्पितसत्त्वासत्त्वोभयस्य भेदाभावेऽपि न क्षतिः । अपुनरुक्तवाक्यसप्तकस्यैव सप्तभङ्गीपदार्थत्वेन सप्तधा वचनमार्गप्रवृत्तेर्निराबाधत्वात् । सत्त्वासत्त्वधर्मविषयतया सप्तधैव बचनमार्गा प्रवर्तन्ते नातिरिक्ता, पुनरुक्तत्वादित्यत्र सप्तभङ्गीतात्पर्यात् । स्वजन्यबोधसमानाकारबोधजनकवाक्योत्तरकालीनवाक्यत्वमेव हि पुनरुक्तत्वम् । प्रकृते च तृतीयचतुर्थयोर्नेदृश पौनरुक्त्य सम्भवति, तृतीयभङ्गजन्यबोधे अस्तित्वविशिष्टनास्तित्वस्य प्रकारतया चतुर्थभङ्गजन्यबोधे चास्तित्वनास्तित्वोभयस्य प्रकारतया तृतीयचतुर्थजन्यबोधयोस्समानाकारत्वविरहात् इति चेन्न । तथा सत्यधिकभङ्गस्य दुर्निवारत्वात् । तथाहि–यथा तृतीयचतुर्थयोरपौनरुक्त्यं विलक्षणबोधजनकत्वात् । तथा व्युत्क्रमार्पितस्य स्यान्नास्ति चास्ति चेति भङ्गस्य नास्त्यस्तित्वसहितावक्तव्यत्वप्रतिपादकभङ्गान्तरस्य च न तृतीयसप्तमाभ्यां पौनरुक्त्यम् । अस्तित्वविशिष्टे नास्तित्वप्रकारकबोधस्य तृतीयेन जननात्, व्युत्क्रमप्रयुक्तेन नास्तित्वसहितास्तित्वप्रकारकबोधस्य जननाच्च विशेषणविशेष्यभावे वैपरीत्येन तादृशबोधयोस्समानाकारत्वाभावात् । एव सप्तमेनापि व्युत्क्रमार्पितोभयसहितावक्तव्यत्वप्रतिपादकभङ्गस्येति नवभङ्गी प्राप्नोति । इति चेन् ।

कदाचित् यह कहो कि क्रमसे योजित सत्त्व असत्त्व इस उभयरूपकी अपेक्षासे अक्रम योजित सत्त्व असत्त्व इस उभयरूपका भेद न होनेपरभी कोइ हानि नहीं है । क्योंकि पुनरुक्तिदोषरहित वाक्यसप्तक समुदायरूप ही सप्तभङ्गी पदार्थ है । उसके द्वारा सप्त प्रकारसे वचनमार्गकी प्रवृत्तिमें कोई बाधा नही है । सत्त्व असत्त्व धर्मके विषयतारूपसे सप्तभेदसे वचनके मार्ग प्रवृत्त हो सकते है न कि अधिक । क्योकि अधिक होनेसे पुनरुक्तिदोष आता है । इसी अर्थके बोधनमें सप्तभङ्गीन्यायका तात्पर्य है । क्योंकि एक वाक्यजन्य जो बोध है उसी बोधके समान बोधजनक यदि उत्तर कालका वाक्य हो तो यही पुनरुक्तदोष है । और प्रचलित प्रकरणमें तृतीय **'स्यादस्ति नास्ति च घटः'** तथा चतुर्थ **'स्यादवक्तव्य एव घटः'** भङ्गोंमें ऐसा पुनरुक्तदोषसभव नही है. क्योकि तृतीयभङ्गजन्य ज्ञानमें अस्तित्वविशिष्ट नास्तित्व प्रकारतासे भासता है और चतुर्थ **'स्यादवक्तव्य एव'** भङ्गजन्य ज्ञानमें अस्तिनास्तित्व उभयत्वरूप अवक्तव्यत्वके साथ अन्वित होकर प्रकारतासे भासता है इस कारण तृतीय तथा चतुर्थ भङ्गसे उत्पन्न ज्ञानोमे समानाकारता नही है क्योंकि तृतीय भङ्गजन्यबोधमें अस्तित्वनास्तित्वप्रकारता अवच्छेदक धर्म है । और चतुर्थभङ्गजन्यबोधमें उभयत्वप्रकारता अवच्छेदक धर्म है इस हेतुसे अवच्छेदक धर्म भिन्न होनेसे समान आकारवाले बोधका अभाव है । सो यह कथनभी युक्त नहीं है । क्योंकि ऐसा भेद माननेसे सप्तभङ्गसे अधिक भङ्गकी सख्या दुर्निवारणीय है । इसका निरूपण

१ दो वा दोका समुदाय २ विनाक्रम ३ सात. ४ एक वाक्यसे उत्पन्न ५ ज्ञान ६ सप्तभङ्गी नय ७ उत्पन्न ८ सहित विशेषणता १० उत्पन्न ११ सादृश्य १२ ज्ञान १३ कठिनतासे दूर करनेयोग्य

इस प्रकार है:—जैसे तृतीय चतुर्थ भङ्गोंमें पुनरुक्तिदोषका अभाव उनके विलक्षण बोधजनक होनेसे माना है. ऐसेही विपरीत क्रमसे नास्तित्व अस्तित्व इस पृथक् भङ्गकी तथा नास्तित्वअस्तित्वसहित अवक्तव्यत्वप्रतिपादक इस पृथक् भङ्गकी सिद्धिमें तृतीय **'स्यादस्ति नास्तित्व'** तथा सप्तम **'स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च'** भङ्गोंके साथ पुनरुक्ति दोष नहीं है। क्योंकि अस्तित्वविशिष्ट नास्तित्वप्रकारकबोधजनकता तृतीय भङ्गमें है। और हमने जो नूतन भङ्ग सिद्ध किया है उसमें अस्तित्वनास्तित्वको विपरीत क्रमसे योजित नास्तित्वसहित अस्तित्वप्रकारकबोधजनकता है इस प्रकार विशेषणविशेष्यभावकी विपरीतता होनेसे दोनों भङ्गोंसे उत्पन्न ज्ञानोंमें समान आकारता नहीं है। ऐसेही सप्तम भङ्ग **'स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च'** के साथ विपरीत अर्थात् नास्तित्व अस्तित्व इस उभयसहित अवक्तव्यत्वप्रतिपादक विलेक्षण बोधजनक भङ्गकी सिद्धि होनेसे नव भङ्गीकी सिद्धि प्राप्त होती है. न कि सप्तभङ्गी यदि ऐसी शङ्का करो?

अत्राहु। तृतीयेऽस्तित्वनास्तित्वोभयस्य प्रधानत्वम्। चतुर्थे चावक्तव्यत्वरूपधर्मान्तरस्येति न तयोरभेदशंका। अवक्तव्यत्वं चास्तित्वनास्तित्वविलक्षणम्। नहि सत्त्वमेव वस्तुनस्स्वरूप, स्वरूपादिभिस्सत्त्वस्येव पररूपादिभिरसत्त्वस्यापि प्रतिपत्ते। नाप्यसत्त्वमेव। स्वरूपादिभिस्सत्त्वस्यापि प्रतीतिसिद्धत्वात्। नापि तदुभयमेव, तदुभयविलक्षणस्यापि जात्यन्तरस्य वस्तुनोनुभूयमानत्वात्। यथा दधिगुड चातुर्जातकादिद्रव्योद्भव पानकं हि केवलदधिगुडाद्यपेक्षया जात्यन्तरत्वेन पानकमिदं सुस्वादुसुरभीति प्रतीयते। न चोभयविलक्षणत्वमेव वस्तुनस्स्वरूपमिति वाच्यम्; वस्तुनि कथञ्चित्सत्त्वस्य कथञ्चिदसत्त्वस्य च प्रतीते। दधिगुडचातुर्जातकाद्युद्भवे पानके दध्यादिप्रतिपत्तिवत्। एवमुत्तरत्रापि बोध्यम्। तथा च विविक्तस्वभावानां सप्तधर्माणां सिद्धेस्तद्विषयसंशयजिज्ञासादिक्रमेण सप्तप्रतिवचनरूपा सप्तभङ्गी सिद्धेति॥

तो यहापर उत्तर कहते है—तृतीय भङ्गमें अस्तित्व नास्तित्व इस उभयकी प्रधानता है। और चतुर्थ भङ्गमें अवक्तव्यत्वरूप पृथक् धर्मकी प्रधानता है. इस लिये इन दोनोंके अभेदकी शङ्का नहीं हो सकती क्योंकि अवक्तव्यत्वरूप धर्म अस्ति नास्तिसे विलक्षण पदार्थ है। सत्त्वमात्रही वस्तुका स्वरूप नहीं है. क्योंकि जैसे स्वरूप आदिसे वस्तुका सत्त्व अनुभव सिद्ध है ऐसेही पररूप आदिसे असत्त्वभी अनुभवसिद्ध है और केवल असत्त्वभी वस्तुका स्वरूप नहीं है क्योंकि स्वकीयरूप आदिसे उसके सत्त्वकीभी प्रतीति सिद्ध है। और सत्त्व असत्त्व एतत् उभयभी वस्तुका स्वरूप नहीं है. क्योंकि उभयरूपसे विलेक्षण अन्य जातीय भी वस्तुका स्वरूप अनुभवसिद्ध है। जैसे दधि शर्करामें मरिच इलायची नागकेसर तथा लवगके सयोगसे द्रव्यसे एक अपूर्व भिन्न जातिका पानक रस उत्पन्न होता है

१ ज्ञानके उत्पन्न करनेकी शक्ति २ उलटापन ३ तृतीय तथा इस नूतन ४ सादृश्य ५ स्यादस्ति नास्ति च ६ स्यादवक्तव्य एव ७ अपूर्व. ८ सत्ता ९ अन्यरूप १० अपने ११ अनुभव १२ अपूर्व

जो कि केवल दधि गुड तथा मरिच तथा लवगादिकी अपेक्षासे विलक्षण सुस्वाद तथा सुगन्धयुक्त होता है। इसका स्वादु श्रीखण्ड तथा आमकेभी रसमें पूर्वोक्त मरिच आदिके सयोगसे अनुभवसिद्ध है। और उभय विलक्षण ही वस्तुका स्वरूप है यह भी नहीं कह सकते। क्योंकि वस्तुमें कथञ्चित् सत्त्व और कथञ्चित् असत्त्वकी प्रतीति होती है। जैसे कि दधि शर्करामें मिलित मरिचादि चातुर्जातक दधि गुड शर्करामें मिलित मरिच पत्रक नागकेसर तथा इलायची इन चार द्रव्योंसे उत्पन्न पीनकमें दधि आदिके भी स्वादुका अनुभव होता है। इसी प्रकार उत्तरके तृतीय चतुर्थ आदि भङ्गोंमेंभी विलक्षण अर्थका अनुभव समझलेना। इससे पृथक् २ स्वभाववाले सातों धर्मोंके सिद्ध होनेसे उन धर्मोंके विषयभूत सशय जिज्ञासा आदि क्रमसे सप्त प्रतिवचनरूप सप्तभङ्गी सिद्ध हुई॥

इयं च सप्तभङ्गी द्विविधा–प्रमाणसप्तभङ्गी नयसप्तभङ्गी चेति। किं पुनः प्रमाणवाक्यम्, किं वा नयवाक्यमिति चेत्?

यह सप्तभङ्गी दो प्रकारकी है एक प्रमाण वाक्य सप्तभङ्गी १ दूसरी नय वाक्य सप्तभङ्गी २। कदाचित् यह कहो कि प्रमाण वाक्य क्या है और नय वाक्य क्या है तो—

अत्र केचित्;–सकलादेशः प्रमाणवाक्यं, विकलादेशो नयवाक्यम्। अनेकधर्मात्मकवस्तुविषयकबोधजनकवाक्यत्व सकलादेशत्व, एकधर्मात्मकवस्तुविषयकबोधजनकवाक्यत्व विकलादेशत्वम् इत्याहुः।

यहांपर कोई ऐसा कहते है कि सकलादेश वाक्य प्रमाण वाक्य है तथा विकलादेश नय वाक्य है। इनमेंसे सत्त्व असत्त्व आदि अनेक धर्म स्वरूप जो वस्तु है उस वस्तु विषयक बोधजनक अर्थात् वस्तुके अनेक धर्मोंका ज्ञान करानेवाला वाक्य सकलादेश है। और वस्तुके सत्त्व असत्त्व अवक्तव्यत्व आदि धर्मोंमेंसे किसी एक धर्मका ज्ञान उत्पन्न करानेवाला वाक्य विकलादेश है॥

तेषां प्रमाणवाक्यानां नयवाक्यनां च सप्तविधत्वव्याघात। प्रथमद्वितीय चतुर्थभङ्गानां सत्त्वासत्त्वावक्तव्यत्वरूपैकैकधर्मात्मकवस्तुविषयकबोधजनकाना सर्वथा विकलादेशत्वेन नयवाक्यत्वापत्ते. तृतीयपञ्चमषष्ठसप्तमानामनेकधर्मात्मकवस्तुविषयक बोधजनकानां सदा सकलादेशत्वेन प्रमाणवाक्यतापत्ते। न च त्रीण्येव नयवाक्यानि चत्वार्येव प्रमाणवाक्यानीति वक्तुं युक्तं सिद्धान्तविरोधात्।

उनके मतमें प्रमाण वाक्योंके तथा नय वाक्योंके भी सप्त भेदका व्याघात होगा. अर्थात् प्रमाण वाक्योंका और नय वाक्योंकाभी सात प्रकारका भेद नहीं सिद्ध होगा। क्योंकि प्रथम द्वितीय तथा चतुर्थ अर्थात् **'स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्य एव'** भङ्गोंकी क्रमसे सत्त्व असत्त्व तथा अवक्तव्यत्वरूप वस्तुके एक एक धर्म विषयक बोध

---

१ शिखिरन २ सत्त्वासत्त्व ३ किसी अपेक्षासे ४ पीनेके पदार्थ ५ सात ६ उत्तर वचन ७ सम्पूर्णरूपसे पदार्थोंका ज्ञान करानेवाला वाक्य ८ एक अशमें पदार्थोंका ज्ञान करानेवाला वाक्य ९ धर्मके

है। चित्र ज्ञानत्वका विरोध है क्योंकि नील पीतादि नाना प्रकारका ज्ञान ही चित्र ज्ञान है न कि एकाकार ज्ञान। और मेचकका अनेक पदार्थ विषयक भी नहीं है क्योंकि यह एक मेचकका ज्ञान इस अनुभवके विरुद्ध अनेक ज्ञान है और अनेक ज्ञान होनेमें मेचकके अनेक ज्ञान ऐसा अनुभव होजायगा। इस हेतुसे यह एक ही अनेकस्वरूप चित्र ज्ञान बौद्धोंको अभिमत है॥

चार्वाकास्तु–"पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति चत्वारि तत्त्वानि, तेभ्यश्चैतन्य, किण्वादिभ्यो मदशक्तिवत्" इति बार्हस्पत्यसूत्रानुरोधात्पृथिव्यादिभूतचतुष्टयपरिणामश्चैतन्यमिति वदन्ति। तच्च न पृथिव्याद्यपेक्षयाऽतिरिक्तमेकं तैरभ्युपगम्यते, तत्त्वान्तरप्रसंगात्, भूतचतुष्टयवाद-व्याघातात्। नापि पृथिव्यादिकमेकैकमेव तत्, घटादेरपि चेतनत्वापत्ते। किन्तु पृथिव्या-द्यनेकात्मकमेकं चैतन्यमिति।

और चार्वाकादि तो–पृथिवी जल तेज तथा वायु ये चार तत्त्व है उनसे ही चैतन्य ऐसे उत्पन्न होता है जैसे कोद्रव आदिसे मादक शक्ति इस बृहस्पतिके सूत्रके अनुसार पृथिवी आदि चारों भूतोका परिणाम ही चैतन्य है ऐसा कहते है। इस कारण पृथिवी आदि भूतचतुष्टयसे भिन्न चैतन्य चार्वाकादि नही मानते क्योकि पृथक् माननेसे चेतन अन्य तत्त्व सिद्ध होगा। और चार भूतोंमे भिन्न कुछ नहीं है इस कथनका व्याघात होगा। और चार्वाकके मतमें पृथिवी आदि एक २ पदार्थ भी चेतन नहीं है क्योंकि ऐसा माननेमे घट आदि भी चेतन होजाएगे किन्तु उनका सिद्धान्त यह है कि पृथिवी आदि अनेक स्वरूप एक ही चैतन्य है॥

मीमासकास्तु-प्रमातृप्रमितिप्रमेयाकारमेकं ज्ञानम्, घटमहं जानामीत्यनुभवात्, ज्ञानाना स्वत प्रकाशत्वात्, इति वदन्ति। तत्रानेकपदार्थनिरूपितविषयताशाल्येकं ज्ञानं स्वीकृ-तम्। विषयताना च ज्ञानस्वरूपत्वात्तादृशविषयतात्रयात्मकमेकं ज्ञानं स्वीकृतमिति। एव-रीत्या मतान्तरेष्वनेकान्तप्रक्रिया बुद्धिमद्भिरूह्येति सर्वमवदातम्।

और मीमांसक कहते है कि प्रमाता प्रमिति तथा प्रमेयाकार एक ही ज्ञान होता है। इसमें घटको मै जानता हू यह अनुभव तथा ज्ञानोंको स्वतः प्रकाशकत्व हेतु है। इसमें प्रमाता प्रमिति तथा प्रमेयरूप अनेक पदार्थ विषयता सहित एक ही ज्ञान स्वीकार किया है। प्रमाता आदि विषयनिष्ठ विषयताओको भी ज्ञानस्वरूप माननेसे तादृशत्रितय-विषयतास्वरूप एक ही ज्ञान स्वीकार किया है इस प्रकार अन्य मतोंमें भी अनेकान्त प्रक्रिया बुद्धिमानोको कल्पना करलेनी चाहिये अत अनेकान्त वाद सर्वथा दोषरहित शुद्ध है।

अनेकभंगैराक्रान्ता सिद्धान्ताम्बुधिसंगता। करोतु विद्वदानन्द सप्तभङ्गीतरङ्गिणी॥

स्यादस्ति आदि अनेक भङ्गोसे समाविष्ट तथा सिद्धान्तरूपी समुद्रसे सयुक्त यह सप्तभङ्गीतरङ्गिणी (सरित्) विद्वानोंको आनन्द सम्प्रदान करे॥

प्रधानम्, सत्त्वरजस्तमसा समूहे प्रधानपदशक्तेस्स्वीकारादिति चेन्न, तथाप्येकानेकात्मकवस्तुस्वीकारस्याक्षतत्वात्। समुदायसमुदायिनोरभेदात्समुदायिनां गुणानामनेकेषां समुदायस्य चैकस्याभेदाभ्युपगमात्।

प्रथम सांख्यवादी सत्त्व रजस् तमो गुणकी साम्याऽवस्थाको प्रधान अथवा प्रकृति ऐसा कहते है उनके मतमें प्रसाद, लाघव, शोष, ताप तथा वारण आदि भिन्न भिन्न स्वभाववाले अनेक स्वरूप पदार्थोंका एक प्रधान स्वरूप स्वीकार करनेहीसे एक अनेक स्वरूप पदार्थ स्वीकृत होचुका। कदाचित् ऐसा कहो कि प्रधान कोई एक वस्तु नही है, किन्तु साम्यावस्थाको प्राप्त सत्त्व रजस् तथा तमो गुण ही प्रधान है. क्योंकि सत्त्व रजस् तथा तमो गुणके समूहमें ही प्रधान पदकी शक्तिका स्वीकार है? सो ऐसा नही कह सकते। यद्यपि तीनों गुणोंका समूह ही प्रधान है, तथापि एक वस्तु अनेकात्मक स्वीकार करना अखण्डित है. क्योकि समुदाय तथा समुदायीका भेदभाव नही है। अनेक समुदायी (समुदायके अनेक अवयव) गुणोका तथा समुदायका अभेद स्वीकृत है।

नैयायिकास्तु द्रव्यत्वादिकं सामान्यविशेषमभ्युपगच्छन्ति। अनुवृत्तिव्यावृत्तिप्रत्ययविषयत्वाद्द्रव्यत्वादिकं सामान्यविशेष। द्रव्यं द्रव्यमित्यनुगतबुद्धिविषयत्वात्सामान्यम्। गुणो न द्रव्यं कर्म न द्रव्यमिति व्यावृत्तिबुद्धिविषयत्वाद्विशेष इति। एवं च सामान्यविशेषात्मकत्वमेकस्याभ्युपगतम्। एवं गुणत्वं कर्मत्वं च सामान्यविशेष इति बोध्यम्।

और नैयायिक तो द्रव्य[1] आदि पदार्थोको सामान्य विशेषरूप स्वीकार करते ही है। अनुवृत्त[2] तथा व्यावृत्त[3] स्वभाववाला होनेसे द्रव्यत्व आदि सामान्य तथा विशेषमय है। पृथिवी जल तथा वायु आदिमे "द्रव्य द्रव्यम्" पृथिवी द्रव्य है जल द्रव्य है वायु द्रव्य है इस प्रकार द्रव्यत्व सर्वत्र अनुगत बुद्धिका विषय होनेसे सामान्यरूप है तथा गुण द्रव्य नही है कर्म द्रव्य नही है इस प्रकार व्यावृत्त बुद्धिका विषय होनेसे विशेषरूप भी है। इस रीतिसे एक वस्तुको सामान्य विशेषरूप नैयायिकोने माना है। ऐसे ही गुणत्व कर्मत्व भी सामान्य विशेषरूप है। ऐसा समझना चाहिये॥

सौगतास्तु–मेचकज्ञानमेकमनेकाकारमभ्युपगच्छन्ति। पञ्चवर्णात्मकं रत्नं मेचकम्। तज्ज्ञानं नैकप्रतिभासात्मकमेव, चित्रज्ञानत्वविरोधात्। नीलपीतादिनानाकारज्ञानं हि चित्रज्ञानं, नत्वेकाकारमेव। नापि मेचकज्ञानमनेकमेव, मेचकज्ञानमिदमित्यनुभवविरोधात्, इमानि मेचकज्ञानानीत्यनुभवप्रसंगाच्च। ततश्च तदेकानेकात्मकं चित्रज्ञानं सौगतादीनामभिमतम्।

तथा बौद्ध मतानुयायी भी मेचक मणिके ज्ञानको एक और अनेकाकार मानते है। पञ्चवर्णस्वरूप रत्नको मेचक कहते है, उस मेचक मणिका ज्ञान एक प्रतिभासरूप नहीं

---

१ द्रव्य कर्म तथा गुण इन तीन पदार्थोको नैयायिक सामान्य विशेषात्मक मानते है २ अनेकमें एक प्रकारकी बुद्धि चली जाय उसको अनुगत बुद्धि कहते है जैसे पृथिवी जलादिमें द्रव्यविषक बुद्धि ३ जो अन्य पदार्थोसे एकको पृथक् करे उसको व्यावृत्त बुद्धि कहते है जैसे गुण द्रव्य नही है कर्म द्रव्य नहीं है॥

अथैवमुपपत्त्या विरोधादिदोषाभावे प्रतिपादितेऽपि मिथ्यादर्शनाभिनिवेशात्तत्त्वमप्रतिपद्यमानं पुरुष प्रति सार्वलौकिकहेतुवादमाश्रित्योच्यते । स्वेष्टार्थसिद्धिमिच्छता प्रवादिना हेतुः प्रयोक्तव्यः, प्रतिज्ञामात्रेणार्थसिद्धेरभावात् । स च हेतु स्वपक्षस्य साधक परपक्षस्य दूषकश्च । येन रूपेण हेतोस्साधकत्वं येन च रूपेण दूषकत्व न तादृशे रूपे हेतोरत्यन्तभिन्ने, तयोर्हेतुधर्मत्वेन हेत्वपेक्षया कथञ्चिदभिन्नत्वात् । न हि तयोर्हेत्वपेक्षयाऽनन्यत्वाद्येन रूपेण साधकत्वं तेन रूपेण दूषकत्वं च सम्भवतीति संकर, येन रूपेण साधकत्वं तेन रूपेण दूषकत्वमेवेति व्यतिकरो वा, साधकत्वदूषकत्वयोर्विरोधो वा सम्भवति, तथाऽनेकान्तप्रक्रियायामपिविरोधादिदोषानवतार ।

अब यद्यपि शास्त्र तथा युक्तिपूर्वक विरोध आदि दोषोंका अभाव जैन मतसे प्रतिपादित होने पर भी मिथ्या दर्शनके आग्रहसे तत्त्व न ग्रहण करनेवाले पुरुषके प्रति सर्व लोक सिद्ध हेतुवादका आश्रय लेकर कहते है । अपने अभीष्ट साध्यकी सिद्धि चाहनेवाले प्रौढवादीको हेतुका प्रयोग अवश्य करना चाहिये, क्योकि केवल प्रतिज्ञामात्रसे अभिलषित अर्थकी सिद्धि नहीं होती. और वह हेतु भी स्वपक्षका तो साधक तथा पर पक्षका बाधक होना चाहिये । जिस हेतुरूपसे स्वपक्षकी साधकता और जिस रूपसे परपक्षकी दूषणता होती है वे दोनो रूप हेतुसे अत्यन्त भिन्न नही होते. साधकत्व तथा दूषकत्व हेतुके धर्म होनेसे हेतुकी अपेक्षा कथचित् अभिन्नरूप है । हेतुकी अपेक्षासे वे अभिन्न स्वरूप होनेसे जिस रूपसे सोधकत्व है उमी रूपमे दूषकत्व भी सम्भव है इस कारण वहा पर सकर दोष नहीं मानाजाता अथवा जिस रूपसे साधकत्व है उसी रूपसे दूषकत्व भी है इस हेतुसे व्यतिकर दोष भी नहीं स्वीकृत है अथवा साधकत्व दूषकत्वका विरोध ही सम्भव है । जैसे हेतुके साधकत्व दूषकत्वरूपमे सकर व्यतिकर तथा विरोध नहीं है ऐसे ही अनेकान्त वाद प्रक्रियामें भी विरोध आदि दोषोका अवकाश नहीं है ॥

वस्तुतस्तु–अनेकान्तप्रक्रियायां सर्वेषा प्रवादिनामपि प्रतिपत्तिरेव। एकानेकात्मकस्य वस्तुन स्सर्वसम्मतत्वात् ।

और यथार्थमें अनेकान्त प्रक्रियामें सब वादियोंकी सम्मति है, क्योंकि एक तथा अनेकस्वरूप वस्तु सबको सम्मत है ॥

साख्यास्तावत्–सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रधानमित्याहुः । तेषां मते प्रसादलाघवशोषतापवारणादिभिन्नस्वभावानामनेकात्मनामेकप्रधानात्मकत्वस्वीकारेणैकानेकात्मकवस्तुन स्वीकृतत्वात् । ननु प्रधानं नामैकं वस्तु नास्ति, साम्यावस्थामापन्नास्सत्त्वरजस्तमोगुणा एव

---

१ यथैकस्यैव हेतोरेकरूपेण स्वपक्षसाधकत्व तदन्यरूपेण परपक्षदूषकत्वमित्यङ्गीकारेऽपि तादृशहेतौ वर्तमानयो. कथञ्चिद्भिन्नाभिन्नयोस्तादृशरूपयोस्संकरो व्यतिकरो विरोधश्च न सम्भवति, तथैव सत्त्वासत्त्वयोरप्येकत्र वर्तमानयोस्तदभावो निर्वाह्य इति भाव. । (इतिटिप्पणी ॥)

२ जैसे निर्दोषरूप हेतुसे अर्हनकी सर्वज्ञता सिद्ध होती है और उसीसे सदोषकी असर्वज्ञता भी फलित होती है ।

सम्भव नहीं है। जैसे दाहके प्रतिबन्धक चन्द्रकान्त मणिके विद्यमान रहते अग्निसे दाह-क्रिया नहीं उत्पन्न होती इसलिये मणि तथा दाहका प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभाव युक्त है किन्तु मणि और दाहके तुल्य अस्तित्वकालमें नास्तित्वका कोई प्रतिबन्ध नहीं है क्योंकि स्वरूपसे वस्तुके अस्तित्वकालमें भी पररूपादिसे नास्तित्वप्रतीति (अनुभव) सिद्ध है। इस रीतिसे विरोध नहीं है॥

यत्तु शीतोष्णस्पर्शयोरिवेति दृष्टान्तकथनम्, तदसत्, एकत्रधूपघटादाववच्छेदकभेदेन-शीतोष्णस्पर्शयोरुपलम्भात्तयोरपि विरोधासिद्धेः।

और जो शीत उष्ण स्पर्शके तुल्य एक वस्तुमें भाव अभाव नहीं रह सकते इस दृष्टान्तका कथन हुआ था वह भी असत् है क्योंकि एक धूपके दाह सहित घट आदिमें अवच्छेदकके भेदसे शीत तथा उष्ण स्पर्शकी उपलब्धि होनेसे उनके विरोधकी असिद्धि है।

यथैकत्र चलाचलात्मनोर्वृक्षादौ रक्तारक्तात्मनोर्घटादावावृतानावृतात्मनोश्शरीरादौ चोपलम्भादविरोधस्तथा सत्त्वासत्त्वयोरपि॥

और जैसे एक वृक्षमें अवच्छेदकभेदसे चल तथा अचलस्वरूपकी, एक घट आदिमें रक्त तथा श्याम स्वरूपकी और एक शरीरमें आच्छदित और अनाच्छादित स्वरूपकी उपलब्धिसे अविरोध है, ऐसे ही एक पदार्थमे सत्त्व असत्त्वकी स्थितिमे भी विरोध नही है॥

एतेन वैयधिकरण्यमपास्तम्, सत्त्वासत्त्वयोरेकाधिकरणतया प्रतीतिसिद्धत्वात्॥

इस पूर्वोक्त कथनसे वैयधिकरण्य दोष भी खण्डित होगया क्योंकि एक अधिकरणकी अपेक्षा भेदसे सत्त्व तथा असत्त्वकी स्थिति अनुभव सिद्ध है॥

यच्चानवस्थानदूषणमुक्तम्, तदपि नानेकान्तवादिनां दोषः। अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुनः स्वयं प्रमाणप्रतिपन्नत्वेनाभ्युपगमात्, अप्रामाणिकपदार्थपरम्परापरिकल्पनाविरहात्।

और जो सत्त्व असत्त्वकी एक वस्तुमें साथ स्थितिका अभावरूप दोष कहा है वह दोष भी अनेकान्तवादियोंको नही है, क्योकि अनेक धर्मस्वरूप वस्तु प्रमाणसे सिद्ध होनेसे स्वय स्वीकार कर चुके है और अप्रामाणिक पदार्थोंकी परपराकी कल्पनाका यहा सर्वथा अभाव ही है॥

एतेन सकरव्यतिकरावपि निरस्तौ, प्रतीतिसिद्धेऽर्थे कस्यापि दोषस्याभावात्, दोषाणां प्रतीत्यसिद्धपदार्थगोचरत्वात्। सशयादयश्च पूर्वमेव निरस्तप्रायाः। इत्यन्यत्र विस्तरः।

इसी पूर्व कथनसे सकर तथा व्यतिकर ये दोनो दूषण भी परास्त हुये क्योकि अनुभव सिद्ध पदार्थ सिद्ध होने पर किसी भी दोषका अवकाश नही है। जब पदार्थकी सिद्धि अनुभवसे विरुद्ध होती है तभी वह दोषोका विषय होता है स्वरूपसे सत्त्व और पररूपादिसे असत्त्व अनुभव सिद्ध होनेसे सकर तथा व्यतिकर दोष नही है। और सशय तथा अप्रतिपत्ति आदिका निरास तो प्रथम ही करचुके है इसका विस्तार अन्यत्र पूर्ण रीतिसे है॥

करानेवाले होनेसे सर्वथा विकलादेशताके कारण नयवाक्यताकी आपत्ति होगी तथा तृतीय, पञ्चम, षष्ठ और सप्तम **'स्यादस्ति नास्ति च, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च, स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च'** भङ्गोंकी क्रमसे सत्त्व असत्त्व, सत्त्वसहित अवक्तव्यत्व असत्त्वसहित अवक्तव्यत्व तथा सत्त्व असत्त्व उभयसहित अवक्तव्यत्व वस्तुके अनेक स्वरूपोंका बोध करानेसे सर्वथा सकलादेशके कारण प्रमाण वाक्यताकी आपत्ति होगी। और तीन ही नय वाक्य है और चार ही प्रमाण वाक्य है ऐसा नही कह सकते। क्योंकि ऐसा कहनेसे अर्थात् प्रथम द्वितीय चतुर्थ भङ्गोको नयवाक्य और तृतीय पञ्चम षष्ठ तथा सप्तम भङ्गोंको प्रमाण वाक्य माननेसे स्याद्वादके सिद्धान्तका विरोध होगा।

यत्तु धर्माविषयकधर्मिविषयकबोधजनकवाक्यत्व सकलादेशत्व, धर्म्यविषयकधर्मविषयक बोधजनकवाक्यत्वं विकलादेशत्वमिति–तन्न। सत्त्वाद्यन्यतमेनापि धर्मेणाविशेषितस्य धर्मिणऽशाब्दबोधविषयत्वासम्भवात्, धर्मिवृत्तित्वाविशेषितस्य धर्मस्यापि तथात्वादुक्तलक्षणस्यासम्भवात्।

और जो कोई कहते है कि विशेषणभूतधर्मको छोडके केवलधर्मी विषयक बोधजनक वाक्य सकलादेश और इसके विपरीत धर्मीको छोडके केवल विशेषणीभूत धर्ममात्र विषयक बोधजनक वाक्य विकलादेश है सो यह भी युक्त नही है क्योकि सत्त्व असत्त्व आदि धर्मोंमेंसे किसी एक धर्मसे अविशेषित धर्मीकी शाब्दबोधमे विषयताका ही असभव है अर्थात् किसी न किसी धर्मसहित ही विशेष्य धर्मीका शाब्दबोधमे भान होता है न कि धर्मरहित धर्मी मात्रका। ऐसे ही धर्मीमे वृत्तितारूपसे अविशेषित धर्मका भी शाब्दबोधमें भान नहीं होता इस हेतुसे पूर्वोक्त सकलादेश तथा विकलादेशका लक्षण असभव है अर्थात् लक्षण असभव दोषसे ग्रस्त है।

न च स्याज्जीव एवेत्यनेन धर्मिमात्रविषयकबोधस्य जननात्स्यादस्त्येवेत्यनेन केवलधर्मविषयकबोधस्य जननाच्च नासम्भव इति वाच्य, यतो जीवशब्देन जीवत्वरूपधर्मावच्छिन्नस्यैव जीवस्याभिधानम्-नतु केवलधर्मिण, अस्तिशब्देन च यत्किञ्चिद्धर्मिवृत्तित्वविशेषितस्यैवास्तित्वस्याभिधानम्- न तु केवलधर्मस्येति सर्वानुभवसाक्षिकम्।

कदाचित् **'स्याज्जीव एव'** कथञ्चित् जीव, इस वाक्यसे केवल जीव धर्मीमात्रका ज्ञान उत्पन्न होनेसे तथा **'स्यादस्त्येव'** कथञ्चित् सत्त्व, इस वाक्यसे केवल सत्त्वधर्ममात्रका ज्ञान उत्पन्न होनेसे पूर्वोक्त सकलादेश तथा विकलादेशके लक्षणका सभव है। ऐसा कहो, सो भी नही कह सकते। क्योंकि जीव शब्दसे जीवत्वरूप धर्मावच्छिन्न ही जीवका कथन

---

१ केवलनय वाक्यता २ केवल ३ प्रसग ४ पूर्वोक्त ५ विशेष्य ६ धर्ममात्रका बोध करानेवाला ७ विशेष्यको ८ धर्ममात्रका बोध करानेवाला ९ ठीक १० विशेषणतासे रहित ११ विशेष्यकी १२ शब्दजन्य ज्ञान १३ स्थितित्व. १४ विशेषण न होकर १५ अन्य वस्तुसे जीवको पृथक करनेवाले जीवत्वरूप अवच्छेदक धर्मसहित

होता है न कि पृथक्कारक अवच्छेदक धर्मशून्य केवल धर्मीमात्रका । ऐसे ही **'अस्ति'** शब्दसे जिस किसी धर्मीमें वृत्तित्वरूपसे विशेषित ही विशेषणता वा वृत्तिता सम्बन्धसे अन्वित अस्तित्व धर्मका कथन होता है न कि धर्मी अन्वित हुये विना केवल धर्ममात्रका भान होता है, इस विषयमें सब विद्वानोंका अनुभव ही साक्षी है ॥

न चैवं-द्रव्यशब्दस्य भावशब्दस्य च विभागानुपपत्तिरितिवाच्यम्;-यतो मुख्यतया द्रव्यप्रतिपादकशब्दो द्रव्यशब्द., यथा जीवशब्द'; जीवशब्देन हि जीवत्वरूप धर्मो गौणतया प्रतिपाद्यते-जीवद्रव्यं मुख्यतया । एव मुख्यतया धर्मप्रतिपादकशब्दो भावशब्द, यथा--अस्त्यादिशब्द, तेन हि-अस्तित्वरूप धर्मस्य मुख्यतया प्रतिपादनम्, धर्मिणश्च गौणतया इति द्रव्यभावशब्दयोर्विभाग उपपद्यत इति ॥

कदाचित् यह कहो कि यदि धर्मी तथा धर्मका पृथक् भान नहीं होता तब द्रव्यवाचक शब्द तथा भाववाचक शब्दोंके विभागकी अनुपपत्ति होगी. सो यह भी नही कह सकते क्योंकि प्रधानतासे द्रव्यका वाचक जो शब्द है उसको द्रव्य शब्द कहते है. जैसे जीव शब्द **'जीवः'** यहापर जीव शब्दसे जीवत्वरूपधर्म तो गौणतासे प्रतिपादित होता है । इसी प्रकार मुख्यतासे धर्मप्रतिपादक जो शब्द है उसको भावशब्द कहते है जैसे अस्ति आदि शब्द । यहांपर **'अस्ति'** इस शब्दसे मुख्यतासे अस्तित्वरूप धर्मका प्रतिपादन होता है और जीव आदि धर्मीका गौणतासे । इस प्रकारसे द्रव्य तथा भाववाचक शब्दोंका विभाग उत्पन्न होता है ॥

यदपि-पाचकोऽयमिति द्रव्यशब्द, पाचकत्वमस्येति भावशब्द, इति द्रव्यभावशब्दयोर्विभागनिरूपणम्; तदपि न सङ्गच्छते। पाचकशब्देनापि पाचकत्वधर्मविशिष्टस्यैव पुरुषस्याभिधानात्, पाचकत्वमित्यनेनापि पाचकवृत्तित्वविशेषितस्यैव धर्मस्य बोधनात्,-इति ॥

और जो ऐसा कहते है **'पाचकोऽयम्'** यह रोटी पकानेवाला. यह द्रव्यवाचक शब्द है और **'पाचकत्वं अस्य'** इसका पाचकपना, यह भाववाचक शब्द है इस प्रकार द्रव्यवाचक तथा भाववाचक शब्दोंके विभागका निरूपण होता है । सो यह कथन भी उनका युक्तिसे संगत नहीं है । क्योंकि पाचक ऐसा कहनेसे पाचकत्वधर्मसहित ही पुरुषका कथन होता है और **'पाचकत्व'** इस शब्दसे पाचकमे वृत्तित्व सम्बन्धसे विशेषित धर्मका ही कथन होता है ॥

अपरे तु-स्यादस्तीत्यादिवाक्यं सप्तविधमपि प्रत्येकं विकलादेश., समुदितं सकलादेश.,-इति वदन्ति ।

और अन्य ऐसा कहते है कि **'स्यादस्ति स्यान्नास्ति'** इत्यादि सप्तप्रकारका जो वाक्यभेद है, वह प्रत्येक तो विकलादेश है और सातो वाक्य मिलकर सकलादेश है ॥

---

१ सत्त्व २ असिद्धि ३ अप्रधानतासे ४ कहा जाता है ५ धर्मवाचक ६ सत्त्व ७ कथन. ८ युक्त ९ युक्त १० विशेषणरूपताको प्राप्त

अत्र चिन्त्यते—कुतस्स्यादस्तीत्यादिवाक्य प्रत्येकं विकलादेश. ?

अब यहांपर विचार करते है कि किस कारणसे **'स्यादस्ति'** इत्यादि सप्तप्रकारका वाक्य भेद एक २ भेद विकलादेश है ॥

ननु—सकलार्थप्रतिपादकत्वाभावाद्विकलादेश इति चेन्न । तादृशवाक्यसप्तकस्यापि विकलादेशत्वापत्ते., समुदितस्यापि सदादिवाक्यसप्तकस्य सकलार्थप्रतिपादकत्वाभावात्, सकलश्रुतस्यैव सकलार्थप्रतिपादकत्वात् ।

कदाचित् ऐसा कहो कि एक २ पृथक् वाक्य सम्पूर्ण अर्थोका प्रैतिपादक नहीं है इस लिये विकलादेश है सो ऐसा भी नही कह सकते । क्योंकि ऐसा माननेसे उस प्रकारके सातों वाक्य भी विकलादेश हो जाँयगे । **'स्यादस्ति'** सत्त्व आदि सातों वाक्य मिलकर भी सम्पूर्ण अर्थोंके प्रतिपादक सिद्ध नही हो सकते । क्योंकि सकलश्रुतज्ञान ही सम्पूर्ण अर्थोंका प्रतिपादक है ॥

एतेन- सकलार्थप्रतिपादकत्वात्सप्तभङ्गीवाक्य समुदितं सकलादेश', इति निरस्तम् ; समुदितस्यापि तस्य सकलार्थप्रतिपादकत्वासिद्धे, सदादिसप्तवाक्येन एकानेकादि सप्तवाक्यप्रतिपाद्यधर्माणामप्रतिपादनात् ।

इसीसे सम्पूर्ण अर्थोका प्रतिपादक होनेसे मिलित सप्तभङ्गी वाक्य समुदाय सकलादेश है, यह मत पैरास्त हो गया क्योंकि मिलित भी सप्तभङ्गी वाक्यकी सम्पूर्ण अर्थोंकी प्रतिपादकता असिद्ध है । सत्त्व असत्त्व आदि सप्तवाक्योंसे एक तथा अनेक आदि सप्तवाक्य प्रैतिपाद्य धर्मोका प्रैतिपादन नही होता ॥

सिद्धान्तविदस्तु एकधर्मबोधनमुखेन तदात्मकानेकाशेषधर्मात्मकवस्तुविषयक बोधजनकवाक्यत्वम् सकलादेशत्वम् । तदुक्तम् । 'एकगुणमुखेनाशेषवस्तु रूपसङ्ग्रहात्सकलादेश ' इति ।

और सिद्धान्तवेत्ता अर्थात् सिद्धान्तके जाननेवाले तो ऐसा कहते है कि एक धर्मके बोधनके मुखसे उसको आदि लेके सम्पूर्ण जो धर्म है उन सब धर्मस्वरूप जो वस्तु तादृश वस्तुविषयक बोधजनक जो वाक्य है उसको सकलादेश कहते है । इसी बातको अन्य आचार्योने भी कहा है. वस्तुके एक धर्मकेद्वारा शेष सब वस्तुके स्वरूपोंका सग्रह करनेसे सकलादेश कहलाता है ॥

तस्यार्थ --यदा—अभिन्नं वस्तु एकगुणरूपेणोच्यते । गुणिनां गुणरूपमन्तरेण विशेषप्रतिपत्तेरसम्भवात्, तदा सकलादेश , एको हि जीवोऽस्तित्वादिष्वेकस्य गुणस्य रूपेण अभेदवृत्त्या, अभेदोपचारेण वा, निरशस्समस्तो वक्तुमिष्यते, विभागनिमित्तस्य तत्प्रतियोगिनो गुणान्तरस्याविवक्षितत्वात । कथमभेदवृत्ति ? कथं चाऽभेदोपचार ? इति चेत् । द्रव्यार्थत्वेनाश्रयणे तदव्यतिरेकादभेदवृत्तिः, पर्यायार्थत्वेनाश्रयणे परस्परव्यतिकरेऽप्येकत्वाध्यारोपादभे-

---

१ कहनेवाला २ खण्डित ३ कथनेके योग्य ४ कथन ५ जनाने ६ द्वार. ७ ज्ञानकरानेवाला ८ बाकी.

दोपचार. इति । अभेदवृत्त्यभेदोपचारयोरनाश्रयणे–एकधर्मात्मकवस्तुविषयबोधजनकं वाक्यं विकलादेश इति प्राहु ॥

इसका तात्पर्य यह है कि जब अभिन्न वस्तु एकगुणरूपसे कहा जाता है तब गुण रूपके विना अर्थात् अन्य शेष धर्मोंके विना वस्तुके विशेष ज्ञानका असभव होनेसे वह एक धर्मद्वारा कथन ही सकलादेश है। क्योंकि एक जीव अस्तित्व आदि सब धर्मोंमें एक धर्म-स्वरूपसे अभेद वृत्तिसे अथवा अभेदके उपचारसे अशरहित है, अत समस्तरूपसे ही वह कथन करनेको अभीष्ट है । क्योंकि विभागके निमित्तभूत उम जीवके प्रतियोगी अन्य धर्म अविवेक्षित है कदाचित् यह कहो कि, कैसे अभेद सम्बन्धसे वस्तुकी वृत्ति है? और किस प्रकार अभेदका उपचार है? तो इसका उत्तर यह है कि,–द्रव्यार्थतारूपसे आश्रय करनेसे द्रव्यत्वरूपसे अभेद होनेके कारण अभेद सम्बन्धसे द्रव्यत्वकी वृत्ति है। क्योंकि द्रव्यत्व धर्मसे सब द्रव्योका अभेद है और पर्यायार्थतारूप अर्थात् घटत्व कपालत्वादि-रूपका तथा जीवमे देवत्व मनुष्यत्वादि वा मिथ्यात्व सम्यक्त्वादि धर्मका आश्रयण करनेसे परस्पर भेद होनेपर भी द्रव्यत्वरूप एकत्वके अध्यारोपसे अभेदका भी उपचार है । और अभेदवृत्ति तथा अभेदोपचार इन दोनोका आश्रय न करके एक धर्मात्मक वस्तुविषयक बोधजनक जो वाक्य है, वह विकलादेश है ॥

तत्र धर्मान्तराप्रतिषेधकत्वे सति विधिविषयकबोधजनकवाक्य प्रथमो भङ्ग । स च स्यादस्त्येव घट इति वचनरूप । धर्मान्तराप्रतिषेधकत्वे सति प्रतिषेधविषयकबोधजनकवा-क्यं द्वितीयो भङ्ग । स च स्यान्नास्त्येव घट इत्याकार तत्र प्रथमवाक्ये घटशब्दो द्रव्यवा-चक, विशेष्यत्वात् । अस्तीति गुणवाचक, विशेषणत्वात ।

इन सप्तभङ्गोंमेसे अन्य धर्मोका निषेध न करके विधि विषयक अर्थात् सत्ता विषयमे बोध उत्पन्न करानेवाला वाक्य प्रथम **'स्यादस्त्येव घटः'** कथञ्चित् घट है, भङ्ग है। उस भङ्गका स्वरूप **'स्यादस्त्येव घटः'** कथञ्चित् घट है इत्यादि वचनरूप है और इसी प्रकार अन्य धर्मका निषेध न करके निषेध विषयक बोधजनक वाक्य द्वितीय भङ्ग है। और **'स्यान्नास्त्येव घटः'** कथञ्चित् घट नही है इत्यादि वचनरूप द्वितीय भङ्गका आकार है, उसमे विशेष्य होनेके कारण प्रथम वाक्यमे घट शब्द द्रव्यवाचक है और विशेषण होनेसे **'अस्ति'** यह शब्द गुणवाचक है ॥

ननु–घटस्य रूपम् । फलस्य माधुर्यम् । पुष्पस्य गन्ध । जलस्य शैत्यम् । वायो स्पर्श । इत्यादौ गुणस्यापि विशेष्यत्व दृश्यते, द्रव्यस्यापि विशेषणत्वं, इति चेत्सत्यम् । तथापि–स-मानाधिकरणवाक्ये–नीलमुत्पल, शुक्ल पट, सुरभिर्वायु, इत्यादौ द्रव्यवाचकस्यैव विशेष्यत्वं गुणवाचकस्यैव विशेषणत्वमिति नियमात् ॥

---

१ विशेषणीभूत २ कहनेको इष्ट ३ अभिन्न धर्मसे स्थिति ४ मानने. ५ सात ६ असत्त्व-विषयक ७ भङ्ग

कदाचित् घटका रूप, फलकी मधुरता, पुष्पका सौगन्ध्य, जलकी शीतलता और वायुका स्पर्श इत्यादि वाक्योंमें गुणकी भी विशेषणता देख पड़ती है क्योंकि इन पूर्वोक्त वाक्योंमें घट, फलादि द्रव्योंका अन्वयरूप तथा मधुरता आदि गुणोंमें है इससे द्रव्यकी भी विशेषणता सिद्ध हुई। ऐसी शङ्का करो तो सत्य है। तथापि समानाधिकरण वाक्यमें अर्थात् अवच्छेदक धर्म तथा वस्तुका गुण दोनो एक अधिकरणमें अन्वयजनक वाक्यमें जैसे नीलकमल शुक्लपट और सुगन्ध पवन इत्यादि स्थानोंमे द्रव्यवाचक कमल आदि शब्दको विशेष्यता तथा गुणवाचक नीलादि शब्दको विशेषणताका नियम है, इस हेतुसे द्रव्यवाचक शब्द प्रथ्य विशेष्य और गुणवाचक विशेषण होता है ॥

तत्र स्वरूपादिभिरस्तित्वमिव नास्तित्वमपि स्यादित्यनिष्टार्थस्य निवृत्तये स्यादस्त्येवेत्येवकार। तेन च स्वरूपादिभिरस्तित्वमेव न नास्तित्वमित्यवधार्यते। तदुक्तम्–

प्रथम भङ्गमे जैसे स्वकीयरूप आदिसे अस्तित्वको भान होता है ऐसे ही नास्तित्वका भी कथञ्चित भान हो इस अनिष्ट अर्थके निराकरणके लिये **'स्यादस्त्येव'** यहा अस्ति पदके अनन्तर 'एव' पद दिया गया, इस हेतुसे **'स्यात् अस्ति एव'** इस वाक्यसे यह अर्थ बोधित होता कि स्वरूप आदिमे घटका अस्तित्वही है न कि नास्तित्व अर्थात् अपने रूपसे है ही है. उसका असत्त्व निजरूपमे नही है। जैसा कि कहा भी है ॥

"वाक्येऽवधारणं तावदनिष्टार्थनिवृत्तये।
कर्तव्यमन्यथानुक्तसमत्वात्तस्य कुत्रचित् ॥" इति ॥

'स्यात् अस्ति एव घटः' कथञ्चित् घट है ही है इत्यादि वाक्यमें अवधारण अर्थात् निश्चयवाचक **'एव'** शब्दका प्रयोग अनिष्ट असत्त्वादि अर्थकी निवृत्तिकेलिये अवश्य कर्त्तव्य है ऐसा न करनेमे अकथितके तुल्य कदाचित् कही उसकी प्रतीति हो जाय।

ननु नानार्थस्थले गौरेवेत्यादौ सत्यप्यवधारणेऽनिष्टार्थनिवृत्तेरभावात्, गामानयेत्यादावसत्यप्यवधारणे प्रकरणादिनानिष्टार्थनिवृत्तेर्भावाच्च, नावधारणाधीनाऽन्यनिवृत्ति। किञ्च– अन्यनिवृत्तिं कुर्वन्नेवकार एवकारान्तरमपेक्षते वा ? न वा ? आद्येऽनवस्थापत्ति.। द्वितीये यथैवकारप्रयोग एवकारान्तराभावेऽपि प्रकरणादिनाऽन्यनिवृत्तिर्लभ्यते तथा सर्वशब्दप्रयोगेऽपि प्रकरणादिनाऽन्यनिवृत्तेर्लाभसम्भवादेवकारप्रयोगोऽनर्थक इति ॥

कदाचित् यह कहो कि नाना अर्थवाचक शब्दोमे जैसे **'गौः एव'** केवल गौ इत्यादिमे निश्चयवाचक एव शब्दके रहनेपर भी अनिष्ट अर्थकी निवृत्तिका अभाव है। गो शब्द पशु इन्द्रिय तथा किरण आदि कई अर्थोंका वाचक है तो अवधारणवाचक रहनेपर भी सब ही अर्थोंकी उपस्थिति होगी और **'गाम् आनय'** गौ लाओ, यहापर अवधारणवाचक एव शब्दके न रहनेपर भी प्रकरण आदिसे अनिष्ट अर्थकी निवृत्ति है। क्योकि दुग्धादिके प्रकरणसे पशुरूपका आनयनरूप अर्थका ज्ञान इस वाक्यसे होता है न कि अन्यका।

१ खुशबू २ सफेद कपडा ३ अनेक

इससे यह सिद्ध हुआ कि अवधारण शब्दके प्रयोगसे अन्यकी निवृत्ति वा अभाव नही होता क्योंकि निश्चयवाचक एव शब्दके रहनेपर भी अन्यकी निवृत्ति नहीं है. और न होनेपर भी **'गाम् आनय'** इसमें अन्यकी निवृत्ति देखी गई है । इस हेतुसे अन्वय व्यतिरेकसे निश्चयवाचक शब्दको अन्यकी निवृत्ति में कारणता नही है । और भी अन्यकी निवृत्ति करता हुआ एवकार अन्य एवकार अर्थात् निश्चयबोधक दूसरे एव शब्दकी अपेक्षा रखता है वा नही ? यदि प्रथम पक्ष है अर्थात् अन्य एव शब्दकी अपेक्षा रखता है तब तो अनवस्था दोष आवेगा । क्योंकि जैसे **'अस्ति'** इत्यादि शब्द अपने अर्थको निश्चय वा पुष्ट करानेकेलिये एव शब्दकी अपेक्षा रखते है ऐसे ही एव शब्द भी अपने अर्थको दृढ करानेकेलिये दूसरे एव शब्दकी अपेक्षा करैगा और दूसरा एव शब्द भी अपने अवधारणरूप अर्थको दृढ करानेकेलिये तीसरे एव शब्दकी अपेक्षा करैगा । इस प्रकार अनवस्था होगी और द्वितीय अर्थात् एवकार दूसरे एवकार की अपेक्षा अपने अर्थके बोध करानेमें नही रखता तो जैसे एवकारके प्रयोगमें दूसरे एवकारके अभावमें भी प्रकरण आदिसे अन्यकी निवृत्तिका लाभ होता है. ऐसे ही सब शब्दोंके प्रयोगमें भी एवकारके विना ही प्रकरण आदिसे अन्यकी निवृत्तिके लाभका सभव होनेसे **'स्यादस्ति एव'** इस भङ्गमें भी एवकारका प्रयोग व्यर्थ ही है ॥

मैवम् । यतश्शब्दाम्नायपरिपाटी विरुद्धयते । तत्र हि ये शब्दास्स्वार्थमात्रेऽनवधारिते सङ्केतितास्ते तद्वधारणविवक्षायामेवकारमपेक्षन्ते । तत्समुच्चयादिविवक्षायां चकारम् । यथा–घटमेवानय, पट चानय, इति । यस्त्ववधारणे सङ्केतितस्तस्य च नावधारणबोधन एवकारान्तरापेक्षा । यथा–चकारस्य समुच्चयबोधने न चकारान्तरापेक्षा ॥

ऐसी शङ्का नही कर सकते क्योकि शब्दशास्त्रकी पद्धति रीति वा सम्प्रदायका इसमें विरोध आता है । शब्दशास्त्रमें अर्थात् शब्दोकी शक्ति तथा शब्दकी व्युत्पत्तिकारक व्याकरण आदि शास्त्रमें जो शब्द निश्चयरहित केवल स्वार्थमात्रमे जैसे घट पट अस्ति आदि कम्बुग्रीवादि व्यक्तिमे सकेतित है वे ही अवधारण अर्थके कथनकी वक्ताकी इच्छा होनेपर एवकार की अपेक्षा करते है और वे ही शब्द पदार्थान्तरके सग्रहकी विवक्षामें चकारकी अपेक्षा रखते है जैसे **'घटमेवानय, पटं चानय'** घट ही लाओ और पट भी लाओ इन दोनो वाक्योंमें घट पट शब्द अपने अर्थ कम्बुग्रीवादिमान् पदार्थ, तथा तन्तुओंकी रचना विशेष मात्रमें संकेतित है, इस हेतुसे वे निश्चयकेलिये एव शब्द तथा समुच्चयबोधक चकारकी अपेक्षा करते है और जो शब्द अवधारणरूप अर्थमें ही सकेतित है अर्थात् जिसका अवधारणरूप ही अर्थ है उसको पुन अवधारणरूप अर्थबोध करानेकेलिये दूसरे एवकार शब्दकी आकाक्षा नही है ऐसे ही समुच्चयरूप अर्थबोधक चकार भी दूसरे चकारकी अपेक्षा नहीं रखता

१ अपने अर्थ. २ निश्चयरूप अर्थ ३ बोधित ४ समूहकेलिये ५ निश्चयकरण ६ वाक्यमे कथितसे अनेक सग्रह

और न्यायशास्त्रकी रीतिसे उसी शब्दके अनन्तर एकार्थबोधक वही शब्द जैसे **'एव एव'** वा **'च च'** ऐसा रखनेसे शाब्दबोध भी नहीं होगा. जैसे **'घटो घटः'** घडा घडा, इस वाक्यका अर्थबोध नहीं होता. क्योंकि शाब्दबोधमें एक शब्दके उच्चारणके पश्चात् उसी अर्थबोधक उसी शब्दको कारणता नहीं मानी गई है। इस हेतुसे भी एव शब्द दूसरे एव शब्दकी अपेक्षा अपने अर्थ बोध करानेमें नहीं रखता.

न च निपातानां द्योतकत्वादेवकारस्य वाचकत्व न सम्भवतीति वाच्यम् । निपातानां द्योतकत्वपक्षस्य वाचकत्वपक्षस्य च शास्त्रे प्रदर्शनात् । "द्योतकाश्च भवन्ति निपाता" इत्यत्र 'च शब्दाद्वाचकाश्च' इति व्याख्यानात् ॥

कदाचित् यह कहो कि निपातोंको तो द्योतकता[३] है नकि वाचकताका सभव है। तब एवकारका प्रयोग व्यर्थ ही है. सो ऐसा नही कह सकते. क्योंकि निपातोका द्योतकत्व तथा वाचकत्व दोनो पक्ष शास्त्रोमें देखे जाते है। **'द्योतकाश्च भवन्ति निपाताः'** निपात द्योतक भी होते है इस वाक्यमे च शब्दसे वाचकताका भी व्याख्यान किया गया है। यदि निपात केवल द्योतक ही होते तो **'द्योतकाश्च'** द्योतक भी यहापर समुच्चयार्थक 'च' शब्दका प्रयोग क्यो किया ? केवल **'द्योतकाः'** इतना ही कहना पर्य्याप्त[४] था. च शब्दसे यह बोधित होता है कि द्योतक तथा वाचक भी निपात है ॥

परे तु-"निपातानां द्योतकतया न द्योतकस्य द्योतकान्तरापेक्षेत्यवधारणद्योतने नैवकारस्यैवकारान्तरापेक्षा, यथा प्रदीपस्य न प्रदीपान्तरापेक्षा, वाचकस्य च घटादिपदस्य युक्ताऽवधारणबोधनायैवकारापेक्षा, ननु-द्योतकस्यापि द्योतकान्तरापेक्षा दृश्यते, एवमेवेत्यादौ एवमितिमान्तनिपातस्यैवकारापेक्षणात्, तथा च सर्वोऽपि द्योतको द्योत्यार्थे द्योतकान्तरापेक्षम्स्यादित्यनवस्थादुर्निवारेति चेन्न, तत्र एव शब्दस्य स्वार्थवाचकत्वादन्यनिवृत्तौ द्योतकापेक्षोपपत्ते, निपातानां वाचकत्वस्यापि शास्त्रसम्मतत्वात्, अतएव उपकुम्भमित्यादावुपशब्देन कुम्भशब्दस्य समास सङ्गच्छते, अन्यथा-उपशब्दस्य द्योतकत्वेन समासो न स्यात्, द्योतकेन समासासम्भवात्" इत्याहु ॥

अन्य तो ऐसा कहते है कि,--निपातोको द्योतकत्व[५] होनेसे एक द्योतकको दूसरे द्योतककी अपेक्षा नहीं रहती इस लिये अवधारणरूप[६] अर्थ द्योतित[७] होनेकेलिये एक एवकार शब्दको दूसरे एवकार शब्दकी अपेक्षा ऐसे नहीं रहती जैसे एक दीपकके प्रकाशित होनेके लिये दूसरे दीपककी अपेक्षा नही रहती और वाचक जो घट तथा अस्ति आदि शब्द है उनके अवधारणरूप अर्थ जनानेकेलिये एवकारकी अपेक्षा योग्य ही है। कदाचित् यह कहो कि एक द्योतकको भी दूसरे द्योतककी अपेक्षा होती है जैसे **'एवम् एव'** ऐसा ही, यहापर एवम् यह जो मकारान्त[८] निपात है उसको एवकी अपेक्षा है तो इस रीतिसे सब द्योतक[९]

---

१ शब्दजन्यज्ञान २ घट शब्दके आगे घट वा कलश शब्द ३ किसी पदके संयोगमे उसीके अर्थकी प्रकाशकता. ४ काफी ५ प्रकाशक ६ निश्चय ७ प्रकाशित. ८ म जिसके अन्तमे ९ प्रकाशक

शब्द अपने द्योत्य अर्थ प्रकाशित होनेकेलिये अन्य द्योतकका सापेक्ष होगा और वह भी द्योतक दूसरेकी अपेक्षा करैगा तो अनवस्था दोष दुर्निवारणीय है, यह कथन भी अनुचित है. क्योंकि **'एवम् एव'** यहांपर जो एवम् शब्द है, वह **'ऐसा'** इस अपने स्वार्थ-मात्रका वाचक है इस हेतुसे वहापर अन्यकी निवृत्तिकेलिये उसको दूसरे द्योतक एव शब्दकी अपेक्षा होनी योग्य है क्योंकि निपातोका वाचकत्व पक्ष भी शास्त्र सम्मत है। इसी कारण **'उपकुम्भम्'** घटके समीप इत्यादि पदोमे निपातरूप समीप अर्थके वाचक उप शब्दके साथ घट शब्दका समास सगत होता है और यदि उप शब्दको केवल द्योतकता मात्र हो तो घट शब्दके साथ उसका समास न हो क्योकि द्योतक शब्दके साथ समासका होना असंभव है ॥

अत्र सौगता.- "सर्वशब्दानामन्यव्यावृत्तिवाचकात् घटादिपदैरेव घटेतरव्यावृत्तिबोधनान्न तदर्थमवधारणं युक्तम्" इति वदन्ति।

यहापर सौगत कहते है कि,–अन्य व्यावृत्ति अर्थात् जिस शब्दका अर्थ कहना है उससे भिन्न जितने शब्द है उन सबकी व्यावृत्ति ही जब सब शब्दकी वाचकता है तब घट आदि पदोसे ही घटसे भिन्न सबकी व्यावृत्तिरूप अर्थका बोध हो जाता है तो उसके लिये[6] अवधारण वाचक एव शब्दका प्रयोग करना योग्य नहीं है ॥

तन्न,–घटादिशब्दाद्विधिरूपतयाप्यर्थबोधस्यानुभवसिद्धत्वात्। यदि च शब्दाद्विधिरूपतयार्थबोधो नानुभवसिद्ध इति मन्यते। तदा कथमन्यव्यावृत्तिशब्दो विधिरूपेणान्यव्यावृत्तिं बोधयति। न च अन्यव्यावृत्तेरपि तदितरव्यावृत्तिरूपेणैवान्यव्यावृत्तिशब्दाद्बोध इति वाच्यम्। तथा सति तदन्यव्यावृत्तेरपि तदितरव्यावृत्तिरूपेण बोधस्य वक्तव्यतयाऽनवस्थापत्तेरिति। तथा च 'वाक्येऽवधारणं तावदनिष्टार्थनिवृत्तये' इति सिद्धम् ॥

सो यह बौद्धोंका कथन युक्तिपूर्वक नहीं है क्योकि,–घट आदि शब्दोंसे अन्यकी निवृत्तिके सिवाय विधिरूपसे भी अर्थका बोध सबको अनुभवसिद्ध है। **'घटः'** ऐसा उच्चारण करनेसे घटकी विधिका भी ज्ञान होता है और यदि ऐसा ही मानते हो कि घट आदि शब्दसे विधिरूप अर्थका बोध अनुभव सिद्ध नहीं है तब अन्य व्यावृत्ति यह शब्द विधिरूपसे अन्यकी निवृत्तिरूप अर्थका बोध कैसे कराता है? कदाचित् ऐसा कहो कि अन्य व्यावृत्ति यह शब्द भी उससे भिन्नकी व्यावृत्तिरूपसे अन्यकी व्यावृत्तिरूप अर्थका बोध कराता है तो यह भी नहीं कह सकते. क्योंकि यदि उससे भिन्न अन्यव्यावृत्ति शब्द भी उससे भिन्न व्यावृत्तिरूपसे और वह अन्य व्यावृत्ति भी अपनेसे भिन्न व्यावृत्तिरूपसे ही अर्थका बोध करावेगा इसी प्रकार उत्तर उत्तर सब अन्य व्यावृत्ति शब्द उससे भिन्न व्यावृत्ति ही रूपसे अर्थ बोध करावेंगे तो अनवस्था दोष आवेगा क्योंकि विधि न माननेसे अन्यकी

---

१ प्रकाश होनेके योग्य २ अवधारणरूप अर्थका द्योतक ३ बौद्धमतानुयायी ४ प्रकृत शब्दसे भेद ५ निराकरणके ६ अनिष्टरूप अर्थकी निवृत्तिकेलिये ७ सत्त्व ८ अन्यकी निवृत्ति.

व्यावृत्ति कभी समाप्त न होगी। इससे यह सिद्ध होगया कि वाक्यमें अनिष्टकी निवृत्तिके लिये अवधारण वाचक एव शब्दका प्रयोग करना उचित है ॥

अयं चैवकारस्त्रिविध, अयोगव्यवच्छेदबोधकः अन्ययोगव्यवच्छेदबोधकः अत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधकश्च इति।

यह अवधारणवाचक एवकार तीन प्रकारका है. एक अयोगव्यवच्छेदबोधक अर्थात् सम्बन्धके न होनेका व्यावर्त्तक, दूसरा अन्ययोगव्यवच्छेदबोधक अर्थात् दूसरेके सम्बन्धकी निवृत्तिका बोधक, और तीसरा अत्यन्त असम्बन्धकी व्यावृत्तिका बोधक ॥

तत्र विशेषणसङ्गतैवकारोऽयोगव्यवच्छेदबोधक, यथा–शङ्ख पाण्डुर एवेति। अयोगव्यवच्छेदो नाम–उद्देश्यतावच्छेदकसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगित्वम्। प्रकृते चोद्देश्यतावच्छेदकं शङ्खत्वं, शङ्खत्वावच्छिन्नमुद्दिश्य पाण्डुरत्वस्य विधानात्, तथा च–शङ्खत्वसमानाधिकरणो योऽत्यन्ताभाव, न तावत्पाण्डुरत्वाभाव, किन्त्वन्याभाव, तदप्रतियोगित्वं पाण्डुरत्वे वर्तत इति शङ्खत्वसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगिपाण्डुरत्ववान् शङ्ख इत्युक्तस्थले बोध।

इनमेंसे विशेषणके साथ अन्वित एवकार तो अयोगकी[१] निवृत्तिका बोध करानेवाला होता है जैसे '**शङ्खः पाण्डुः एव**' शख श्वेत ही होता है। इस वाक्यमें उद्देश्यतावच्छेदकके समान अधिकरणमें रहनेवाला जो अभाव उस अभावका जो अप्रतियोगी उसको अयोग व्यवच्छेद कहते है। यह प्रथम दिखा चुके हैं कि जिस वस्तुका अभाव कहा जाता है वह वस्तु उस अभावका प्रतियोगी होता है। अब यहां प्रकृत प्रसगमें उद्देश्यताका अवच्छेदक धर्म शखत्व है क्योंकि शखत्व धर्मसे अवच्छिन्न[२] जो शंख है उसको उद्देश्य[३] करके पाण्डुत्व धर्मका विधान करते है तो शंखत्व जो उद्देश्यताका अवच्छेदक धर्म है उसका अधिकरण शख है शखरूप उद्देश्यमें उद्देश्यतावच्छेदकधर्म समवाय सम्बन्धसे रहता है तो इस रीतिसे शखत्वके समान अधिकरणरूप शखमें नीलत्वका अभाव है पीतत्वका अभाव है परन्तु पाण्डुत्वका अभाव नही है. इस हेतुसे शखमें रहनेवाले अभावका अप्रतियोगी पाण्डुत्व हुआ न कि प्रतियोगी क्योंकि इस अभावकी प्रतियोगिता नीलत्व आदि धर्ममें रहती है और प्रतियोगितावाला ही प्रतियोगी होता है। इस रीतिसे शंखत्वके समान अधिकरणमें रहनेवाले अभावका अप्रतियोगी पाण्डुत्वधर्म होगया उस धर्म करके सहित शख है, ऐसा पूर्वोक्त उदाहरण '**शङ्खः पाण्डुः एव**' मे अर्थ बोध होता है. तात्पर्य्य यह है कि उद्देश्यतावच्छेदक शखत्व जिसमें[४] रहता है, उसी अधिकरणमें रहनेवाला जो अभाव है उसका जो प्रतियोगी न होगा वही अयोगव्यवच्छेद होगा तो उद्देश्यतावच्छेदक शंखत्व शखरूप अधिकरणमें है, उसमें पाण्डुत्वका अभाव तो है नही क्योंकि वह तो पाण्डुवर्ण ही है, इसलिये उद्देश्यतावच्छेदक समानाधिकरण अभावका अप्रतियोगी

---

१ असम्बन्ध २ सहित ३ रख ४ शखमें

पाण्डुत्व है उसीके अयोग अर्थात् असम्बन्धकी निवृत्तिका बोधक एवकार यहां **'शङ्खः पाण्डुः एव'** पर लगाया गया है ॥

विशेष्यसङ्गतैवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदबोधक । यथा -पार्थ एव धनुर्धर इति । अन्ययोगव्यवच्छेदो नाम विशेष्यभिन्नतादात्म्यादिव्यवच्छेद । तत्रैवकारेण पार्थान्यतादात्म्याभावो धनुर्धरे बोध्यते । तथा च पार्थान्यतादात्म्याभाववद्धनुर्धराभिन्न. पार्थ इति बोध ॥

और विशेष्यके साथ सङ्गत[1] जो एवकार है वह अन्ययोग[2]व्यवच्छेदरूप अर्थका बोध कराता है जैसे **'पार्थ एव धनुर्धरः'** धनुर्धर पार्थ ही है इस उदाहरणमें एवकार अन्य योगके व्यवच्छेदका बोधक है विशेष्यसे अन्यमें रहनेवाले जो तादात्म्य[3] आदि उनकी व्यावृत्तिका जो बोधक उसको अन्ययोगव्यवच्छेदबोधक कहते है । इस पूर्वोक्त उदाहरणमे एवकार शब्दसे पार्थसे[4] अन्य पुरुषमें रहनेवाला जो तादात्म्यका अभाव वह धनुर्धरमें बोधित होता है । इस रीतिसे पार्थसे अन्य व्यक्तिमें रहनेवाला जो तादात्म्य उसके अभावसहित जो धनुर्धर तदभिन्न पार्थ है अर्थात् पार्थसे अतिरिक्तमे धनुर्धरत्व नहीं है ऐसा **'पार्थ एव धनुर्धरः'** इस उदाहरणका अर्थ होता है । यहांपर धनुर्धरत्वका पार्थसे अन्यमें सम्बन्धके[5] व्यवच्छेदका[6] बोधक पार्थ इस विशेष्यपदके आगे एव शब्द लगाया गया है ॥

क्रियासङ्गतैवकारोत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधक , यथा नीलं सरोज भवत्येवेति । अत्यन्तायोगव्यवच्छेदो नाम–उद्देश्यतावच्छेदकव्यापकाभावाप्रतियोगित्वम् । प्रकृते चोद्देश्यतावच्छेदकं सरोजत्वम्, तद्धर्मावच्छिन्ने नीलाभेदरूपधात्वर्थस्य विधानात । सरोजत्वव्यापको योऽत्यन्ताभाव., न तावन्नीलाभेदाभाव, कस्मिश्चित्सरोजे नीलाभेदस्यापि सत्त्वात, अपि त्वन्याभाव', तदप्रतियोगित्व नीलाभेदे वर्तत इति सरोजत्वव्यापकात्यन्ताभावाप्रतियोगि नीलाभेदवत्सरोजमित्युक्तस्थले बोध ।

और क्रियाके साथ सङ्गत जो एवकार है वह अत्यन्त अयोगके व्यवच्छेदका बोधक है जैसे **'नीलं सरोजं भवत्येव'** कमल नील भी होता है उद्देश्यतावच्छेदक धर्मका व्यापक जो अभाव उस अभावका जो अप्रतियोगी उसको अत्यन्तायोगव्यवच्छेद कहते है । प्रकृत प्रसङ्गमें गृहीत **'नीलं सरोजं भवत्येव'** इस उदाहरणमे उद्देश्यतावच्छेदक धर्म सरोजत्व है क्योकि उसीसे अवच्छिन्न कमलको उद्देश्य करके नीलत्वका विधान है सो सरोजत्वरूप धर्मसे अवच्छिन्न[10,11] सरोजमे नीलसे अभेदरूप धातुके अर्थका विधान यहांपर अभीष्ट है अत सरोजत्वका व्यापक[12] जो अभाव है वह नीलके अभेदका अभाव नही हो सकता क्योंकि किसी न किसी सरोजमें नीलका अभेद भी है जब किसी सरोजमें[13] नीलका अभेद है तब नीलके अभेदका अभाव सरोजत्वका व्यापक नहीं है

१ अन्वयको प्राप्त २ अन्यके साथ सम्बन्धकी निवृत्ति ३ अभेद ४ अर्जुन ५ अभेद ६ अन्ययोग ७ व्यावृत्ति ८ अन्वित ९ व्यावृत्ति १० सरोजको अन्यसे पृथक् करनेवाला ११ सहित १२ व्याप्त होके कमलमात्रमें रहनेवाला १३ कमल.

यह सिद्ध हुवा किन्तु अन्यघटादि पदार्थका अभाव सरोजत्वका व्यापक है उस अभावकी प्रतियोगिता घट आदिमें है और अप्रतियोगिता नीलके अभेदमें है । इस रीतिसे सरोजत्वका व्यापक जो अत्यन्ताभाव उस अभावका अप्रतियोगी जो नीलभेद उस अभेद-सहित सरोज है ऐसा **'नीलं सरोजं भवत्येव'** इस स्थानमे अर्थ होता है,—भावार्थ यह है कि,—जहा अभेद रहैगा वहापर अभेदका अभाव नही रह सकता, इसलिये सरोजत्व व्यापक अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी नीलका अभेद हुआ और उस नीलके अभेदसे युक्त सरोज है ऐसा अर्थ पूर्वोक्त वाक्यका हुआ ॥

नन्वेवं—स्यादस्त्येव घट इत्यादावत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधकेनैवकारेण भवितव्यम्, क्रिया-सङ्गतत्वात्, एव च विवक्षितार्थासिद्धि', कस्मिंश्चिद्घटेऽस्तित्वस्याभावेऽपि तादृशप्रयोग-सम्भवात् । यथा कस्मिंश्चित्सरोजे नीलत्वस्याभावेऽपि नीलसरोजं भवत्येवेति प्रयोग' । इति चेन्न,—प्रकृतेऽयोगव्यवच्छेदबोधकस्यैवैवकारस्य स्वीकृतत्वात्, क्रियासङ्गतस्यैवकार-स्यापि क्वचिदयोगव्यवच्छेदबोधकत्वदर्शनात् । यथा- ज्ञानमर्थं गृह्णात्येवेत्यादौ ज्ञानत्वसमाना-धिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्यार्थग्राहकत्वे धात्वर्थे बोध । तत्राप्यत्यन्तायोगव्यवच्छे-दबोधस्योपगमे ज्ञानमर्थं गृह्णात्येवेतिवज्ज्ञानं रजत गृह्णात्येवेति प्रयोगप्रसङ्ग । सकलज्ञानेषु रजतग्राहकत्वस्याभावेऽपि यत्किंचिज्ज्ञाने रजतग्राहकत्वसत्त्वेनैव ज्ञान रजतं गृह्णात्येवेत्यत्यन्ता-योगव्यवच्छेदबोधकैवकारप्रयोगस्य निर्बाधत्वात् । तद्वत्प्रकृते क्रियासङ्गतोऽप्ययोगव्यव-च्छेदबोधक एवकार । स्यादस्त्येव घट इत्यादौ घटत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगि-त्वस्यैवकारार्थस्य धात्वर्थेऽस्तित्वेऽन्वयेन घटत्वसमानाधिकरणोऽत्यन्ताभावाप्रतियोग्यस्तित्ववान घट इति बोध । घटत्वसमानाधिकरणो योऽत्यन्ताभाव, न तावदस्तित्वात्यन्ताभाव, किन्त्व-न्याभाव, तदप्रतियोगित्वस्यास्तित्वे सत्त्वात् ॥

कदाचित् ऐसा कहो कि,—ऐसा माननेसे **'स्यादस्ति एव घटः'** कथचित् घट है इत्यादि उदाहरणमें भी अत्यन्तायोगव्यवच्छेदक ही एवकार होना चाहिये क्योंकि यहा भी क्रिया सङ्गत एवकार है और क्रियामे अन्वित एवकारको अत्यन्तायोगव्यव-च्छेदक कह आये है तो इस प्रकार कथन करनेको इष्ट अर्थात् स्वरूपादिसे भी अस्तित्वके सदृश नास्तित्वरूप अनिष्टकी व्यावृत्ति अर्थात् अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थकी सिद्धि नही होगी[१] और किसी घटमे अस्तित्वके अभावमे भी इस प्रकारके प्रयोगकी सभावना है। जैसे किसी सरोजमे[२] नीलत्वके अभावमें भी **'नीलं सरोजं भवत्येव'** कमल नील भी होता है ऐसे ही **'स्यादस्ति एव घटः'** यहा भी उसी अर्थमे एवकार क्यों नही? ऐसा यहा नही कह सकते । क्योंकि इस प्रचलित स्थल **'स्यादस्ति एव घटः'** मे अयोगव्यवच्छेदबोधक ही एवकार स्वीकार किया गया है । कहीं २ क्रियाके साथ सङ्गत एवकार भी अयोगव्यवच्छेदबोधक अर्थमें देखा गया है । जैसे **'ज्ञानं[३] अर्थं**

---

१ नील गुणीका अभेद २ श्वेत कमलमे ३ ज्ञान

गृह्णात्येव' ज्ञान किसी न किसी अर्थको ग्रहण करता ही है इत्यादि उदाहरणमें उद्देश्यतावच्छेदक ज्ञानत्व धर्मके समान अधिकरणमें रहनेवाले अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी अर्थग्राहकत्वरूप धात्वर्थका बोध होता है। ज्ञानमे जब अर्थग्राहकता है तब उसमें अर्थग्राहकत्वका अत्यन्ताभाव नहीं रह सकता इसलिये अर्थग्राहकत्व उस अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी हुआ। यदि वहा भी अत्यन्तायोगव्यवच्छेदरूप अर्थका बोधक ही एवकार मानोगे तब **'ज्ञानमर्थं गृह्णाति एव'** इसीके सदृश **'ज्ञानं रजतं गृह्णाति एव'** ज्ञान चांदीको ग्रहण करता ही है ऐसा भी प्रयोग हो जायगा. यद्यपि सब ज्ञानोंमें रजतकी ग्राहकताका अभाव है क्योंकि सब ज्ञान चांदीको नहीं ग्रहण करते तथापि कोई एक चांदीको भी ग्रहण करता है इस हेतुसे **'ज्ञानं रजतं गृह्णाति एव'** इस उदाहरणमें अत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधक एवकारके प्रयोगमे कोई बाधा न होगी तो जैसे वहां अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थका बोधक क्रियासङ्गत भी एवकार है वैसा ही यहां भी क्रियामें अन्वित होनेपर भी एवकार अयोगव्यवच्छेदबोधक ही है **'स्यादस्ति एव घटः'** कथंचित् घट है ई है इत्यादि उदाहरणमें उद्देश्यतावच्छेदक घटत्वरूप धर्मके अधिकरणरूप घटमें रहनेवाले अत्यन्ताभावका अप्रतियोगित्वरूप जो एवकारका अर्थ है. उसका अस् धातुके अस्तित्वरूप अर्थमें अन्वय होनेसे घटत्वका जो अधिकरण उसी अधिकरणमें रहनेवाले अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी जो अस्तित्व तादृश अस्तित्ववान् अर्थात् अस्तित्वसहित घट ऐसा इम वाक्यका अर्थ हुआ तात्पर्य्य यह है कि घटमें घटत्व धर्म है और **'अस्ति'** इस शब्दसे अस्तिताका विधान भी घटत्व धर्मसे अवच्छिन्न घटको उद्देश्य करके करते है इसलिये उसीमें अस्तित्व भी है तो अस्तित्व रहते तो अस्तित्वका अत्यन्ताभाव घटमें नही कह सकते किन्तु पटादिका अत्यन्ताभाव घटमें है उसका प्रतियोगी पटादि पदार्थ हुवे, अप्रतियोगी अस्तित्व इसलिये उद्देश्यतावच्छेदक घटत्वके समानाधिकरणमें रहनेवाले अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी जो अस्तित्व उस अस्तित्वसे युक्त घट ऐसा अर्थ इस **'स्यादस्त्येव घटः'** वाक्यका हुआ.

अथ–घटत्वसमानाधिकरणो योऽत्यन्ताभाव इत्युक्तेऽस्तित्वात्यन्ताभावोऽपि भवितुमर्हति, अस्तित्वात्यन्ताभावस्य नास्तित्वस्य घटे सत्त्वात्, तादृशाभावाप्रतियोगित्व चास्तित्वे बाधितम्, इति निरुक्तवाक्येनास्तित्वाभावस्य नास्तित्वस्य घटे निषेध प्राप्नोतीति चेत्।–उच्यते, प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रतियोगित्वमेवकारार्थ, तादृशाभावे–उद्देश्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्यं चोद्देश्यबोधकपदसमभिव्याहारलभ्यम्। शङ्खः पाण्डुर एवेत्यादौ प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रतियोगित्वरूपैवकारार्थैकदेशेऽभावे शङ्खत्वसामानाधिकरण्यस्य शङ्खपदसमभिव्याहारलभ्यत्वात्। एवं च प्रकृतेऽप्येवकारार्थ प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रतियोगित्वम्, अभावे घटत्वसामानाधिकरण्यन्तु घटपदसमभिव्याहारलभ्यम्। तथा च घटत्वसमानाधि-

---

१ अर्थ ग्रहण करानेकी शक्ति २ चांदी ३ जानता.

करणः प्रतियोगिव्यधिकरणो योऽभावः, न तावदस्तित्वाभावरूप नास्तित्व, तस्य प्रतियोगि-नाऽस्तित्वेन समानाधिकरणत्वात् । किन्त्वन्याभाव , तदप्रतियोगित्व चास्तित्वे निर्बाधमिति ॥

कदाचित् ऐसी शका करो कि घटत्व समानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव अर्थात् जिस अधिकरणमें घटत्व धर्म रहता है उसीमें रहनेवाला जो अत्यन्ताभाव ऐसा कहनेपर अस्तित्वका अभाव भी हो सकता है क्योंकि अस्तित्वका अत्यन्ताभाव जो नास्तित्व है वह भी परकीय रूपादिसे है [२] तो उस अस्तित्वके अत्यन्ताभावकी अप्रतियोगिता अ-स्तित्वमें बाधित है इस रीतिसे पूर्वोक्त **'स्यादस्त्येव घटः'** वाक्यसे अस्तित्वका अभाव जो नास्तित्व है उससे घटमें निषेध प्राप्त होता है तो इसका उत्तर देते है,– यहांपर अभावका अप्रतियोगी इस पदसे प्रतियोगिव्यधिकरण जो अभाव अर्थात् जिस अधिकरणमें प्रतियोगी है उसीमें उसका अभाव भी हो ऐसा नही किन्तु प्रतियोगीके अधिकरणमें न रहनेवाला जो अभाव उस अभावका अप्रतियोगित्वरूप इस स्थलमे एवकारका अर्थ है. इस प्रकार प्रतियोगिव्यधिकरण अभावमें उद्देश्यताव-च्छेदक समानाधिकरणताका लाभ उद्देश्यबोधक घट आदि पदके सन्निधानसे होता है । जैसे **'शङ्खः पाण्डुः एव'** इत्यादि उदाहरणमें प्रतियोगिव्यधिकरण अभावके अप्रतियोगि-त्वरूप एवकारके अर्थके एक देशरूप अभावमें शखत्व समानाधिकरणताका शख पदके सन्निधानसे लाभ होता है । ऐसा स्वीकार करनेसे प्रकृतस्थल **'स्यादस्त्येव घटः'** में भी एवकारका अर्थ प्रतियोगी व्यधिकरण अभावका अप्रतियोगित्वरूप है इस [१]प्रतियोगी व्यधिकरण अभावमें घटत्व समानाधि[२]करणताका लाभ तो घट पदके सन्नि[३]धानसे होता है तो इस रीतिसे घटत्व समानाधि[४]करण तथा प्रतियोगी [५]व्यधिकरण जो अभाव है वह अस्तित्वका अभाव नास्तित्व नही हो सकता है क्योकि उसी अस्तित्वके अभावका प्रतियोगी अस्तित्व भी घटरूप अधिकरणमें है किन्तु अस्तित्वके अभावसे अन्य पटत्व आदिका अभाव रह सकता है उसके अभावके प्रतियोगी पटत्व आदि होगे और अप्रतियोगित्व अस्तित्वमें विना किसी बाधाके सिद्ध है उस अस्तित्वसहित घट यह अर्थ सिद्ध होगया.

अत्र प्रतियोगिवैयधिकरण्याप्रवेशे पूर्वोक्तरीत्या सर्वप्रकारेणाप्यस्तित्वप्रसक्त्या नास्तित्व-निषेधे प्राप्तेऽस्तित्वैकान्त्यनिवृत्तिपूर्वकमनैकान्त्यद्योतनाय स्यात्कार । स्यात्कारप्रयोगाधीनमेवै-वकारार्थे प्रतियोगिवैयधिकरण्यं पूर्वं प्रवेशितम ।

इस पूर्वोक्त उदाहरणमें प्रतियोगिव्यधिकरण ऐसा प्रवेश न करनेपर पूर्व कथित रीतिसे सर्व प्रकारसे अस्तित्वके प्रसगसे नास्तित्वका निषेध प्राप्त होनेपर अस्तित्वकी

---

१ जिसमें उसका प्रतियोगी है उस अधिकरणमे न रहनेवाले २ जहा घटत्व रहता है उसी अधि-करणमें स्थिति ३ समीपता ४ जिस अधिकरणमे घटत्व है उसीमे रहनेवाला ५ अपने प्रतियोगीके अधिकरणमें न रहनेवाला

सर्वथा निवृत्ति न करके अनेकान्त पक्षके सूचनार्थ **'स्यात् अस्ति एव घटः'** यहांपर स्यात्कारका प्रयोग किया है। क्योंकि स्यात्कारके ही आधीन एवकारके अर्थके एक देश अभावमें प्रतियोगिवैयधिकरण्य यह पद पूर्वनिविष्ट किया गया है

स्याच्छब्दस्य चानेकान्तविधिविचारादिषु बहुष्वर्थेषु सम्भवत्सु इह विवक्षावशादनेकान्तार्थो गृह्यते। अनेकान्तत्वं नामानेकधर्मात्मकत्वम्। अन्तशब्दस्य घटादावभेदेनान्वय। तथा चानेकधर्मात्मको घटस्तादृशास्तित्ववानितिबोध।

यद्यपि अनेकान्त विधि, विचार आदि अनेक अर्थ स्यात्कारके सभव है तथापि यहां वक्ताकी विशेष इच्छासे अनेकान्तार्थका वाचक ही स्यात्कार शब्दका ग्रहण है। अनेकान्त इस शब्दका अर्थ अनेक धर्मस्वरूप है और अनेकान्तमे जो अन्त शब्द है उसका घट आदि शब्दमें अभेद सम्बन्धसे अन्वय होता है तो अनेक धर्मात्मक घट अथवा अनेक धर्मस्वरूप अस्तित्ववान् घट ऐसा अर्थ **'स्यादस्त्येव घटः'** इस वाक्यका होता है॥

न च-स्याच्छब्देनैवानेकान्तस्य बोधनेऽस्त्यादिवचनमनर्थकमिति वाच्यम्। स्याच्छब्देन सामान्यतोऽनेकान्तबोधनेऽपि विशेषरूपेण बोधनायास्त्यादिशब्दप्रयोगात्॥

स्यात् शब्दसे ही जब अनेक धर्मस्वरूप घट ऐसा बोध होगया तब अस्तित्व आदिका कथन व्यर्थ है' ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि स्यात् शब्दसे सामान्यरूपसे अनेकान्त पक्षका बोध होनेपरभी विशेष रूपसे बोध करानेकेलिये अस्तित्व आदि शब्दोका प्रयोग आवश्यक है॥

तदुक्तम्—ऐसा कहा भी है—

"स्याच्छब्दादप्यनेकान्तसामान्यस्यावबोधने।
शब्दान्तरप्रयोगोऽत्र विशेषप्रतिपत्तये॥" इति॥

"सामान्यरूपसे स्यात् शब्दसे अनेकान्तरूप अर्थका बोध होनेपर भी विशेषरूपसे अर्थका बोध करानेकेलिये वाक्यमे अस्तित्व आदि अन्य शब्दोका प्रयोग करना आवश्यक है"॥

यथा-वृक्षो न्यग्रोध, इति वृक्षत्वेन रूपेण न्यग्रोधस्य बोधनेऽपि न्यग्रोधत्वेन रूपेण न्यग्रोधबोधनाय न्यग्रोधपदप्रयोग। स्याच्छब्दस्य द्योतकत्वपक्षे तु न्यायप्राप्त एवास्त्यादिप्रयोग। अस्त्यादिशब्देनोक्तस्यानेकान्तस्य स्याच्छब्देन द्योतनात। स्याच्छब्दाप्रयोगे सर्वथैकान्तव्यवच्छेदेनानेकान्तप्रतिपत्तेरसम्भवात, एवकारावचने विवक्षितार्थाप्रतिपत्तिवत।

जैसे **'वृक्षो न्यग्रोधः'** वृक्ष वट इस उदाहरणमें वृक्षत्व इस सामान्यरूपसे वटका बोध होनेपर भी न्यग्रोधत्व इस विशेषरूपसे न्यग्रोधका बोध करानेके लिये न्यग्रोध इस शब्दका प्रयोग किया गया है। और स्यात् शब्दके द्योतकत्वपक्षमें तो अस्ति आदि शब्दोंका प्रयोग करना वाक्यमें न्यायसे प्राप्त है क्योंकि अस्ति आदि शब्दोंसे

१ सयुक्त २ साधारण ३ वटत्व ४ वट

कथित अनेकान्तरूप अर्थ स्यात् शब्दसे द्योतित होता है और द्योतकत्व तथा वाचकत्व दोनो पक्ष अव्यय निपातोंका शास्त्र समत ही है । स्यात् शब्दका प्रयोग न करनेपर सर्वथा एकान्त पक्षकी व्यावृत्तिपूर्वक अनेकान्तरूप अर्थका ज्ञान ऐसे असभव है जैसे एवकार प्रयोगके विना विवक्षित अर्थका निश्चयपूर्वक ज्ञान ॥

नन्वप्रयुक्तोऽपि स्याच्छब्दो वस्तुनोऽनेकान्तस्वरूपत्वसामर्थ्यात्प्रतीयते, सर्वत्रैवकारवत्, इति चेत्सत्यं, प्रतिपाद्याना स्याद्वादन्यायकौशलाभावे वस्तुसामर्थ्यात्तदप्रतीत्या तेषा प्रतिपत्त्यर्थं तदावश्यकत्वात् । प्रतिपाद्याना स्याद्वादकौशले च स्यात्कारप्रयोग इष्ट एव । प्रमाणादिनाऽनेकान्तात्मके समस्तवस्तुनि सिद्धे कुशलानामस्ति घट इति प्रयोगेऽपि स्यादस्त्येव घट इति प्रतिपत्तिसम्भवात् ।

कदाचित् ऐसी शङ्का करो कि सब स्थानमें एवकार शब्दके प्रयोगके विना भी जैसे अवधारणरूप अर्थका बोधक एव शब्दका बोध शब्दकी शक्तिसे हो जाता है ऐसे ही वाक्यमे अप्रयुक्त अर्थात् प्रयोग न किया हुआ भी **'स्यात्'** शब्द वस्तुकी अनेकान्तरूप अर्थबोध करानेकी शक्ति होनेसे अनेकान्तरूप अर्थबोधक स्वय भासैगा यह शङ्का सत्य है परन्तु जिनमतके जीवनरूप स्याद्वादन्यायमे शिष्योका कौशल न होनेपर केवल वस्तुके सामर्थ्यमात्रसे अनेकान्तरूप अर्थका भान न होगा इसलिये उन अप्रौढ शिष्योको अनेकान्तरूप अर्थका बोध करानेकेलिये वाक्यमे स्यात् शब्दका प्रयोग आवश्यक है । और शिष्योकी स्याद्वादमे पूर्ण रूपसे कुशलता होनेपर तो स्यात् शब्दका प्रयोग करना इष्ट ही है । क्योकि जब प्रमाण आदिमे सम्पूर्ण वस्तुमे अनेकान्त स्वरूपता सिद्ध है तब स्याद्वादमें कुशल मनुष्यको **'अस्ति घटः'** घट है ऐसा प्रयोग करनेपर भी **'स्यादस्ति एव घटः'** कथचित् घट है इस अर्थका बोध होना सम्भव है ॥

तदुक्तम्—सो अन्यत्र भी कहा है.

"सोऽप्रयुक्तोऽपि वा तज्ज्ञैस्सर्वत्रार्थात्प्रतीयते ।
यथैवकारोऽयोगादिव्यवच्छेदप्रयोजनः ॥" इति ॥

"स्याद्वादके जाननेवाले बुद्धिमान् जन यदि अनेकान्तरूप अर्थके प्रकाशक स्यात्का प्रयोग न भी करें तो वह प्रमाणादि सिद्ध अनेकान्त वस्तुके स्वभावसे ही सर्वत्र स्वय अर्थात् आप ही ऐसे भासता है जैसे विना प्रयोग भी अयोगादिके व्यवच्छेदका बोधक एवकार शब्द" ॥

ननु योऽस्ति घटादिस्स सर्वोऽपि स्वायत्तद्रव्यक्षेत्रकालभावै, नेतरै । तेषामप्रस्तुतत्वादेव निराससम्भवात् । तथा च स्यात्कारप्रयोगो व्यर्थ इति चेत्सत्यम् । स तु तादृशोऽर्थश्शब्दात्प्रतीयमान किंदृशात्प्रतीयत इति चिन्ताया स्यात्कार. प्रयुज्यते । स च लिङन्तप्रतिरूपको निपात. ।

---

१ प्रकाशित. २ कथन करनेको अभीष्ट ३ निश्चय ४ प्रवीणता ५ व्यावृत्ति

कदाचित् ऐसी शङ्का करो कि जो घट आदि पदार्थ है वे सब अपने आधीन द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावसे ही है न कि अन्यके आधीन द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावसे है. क्योंकि अन्य द्रव्य क्षेत्रकालादिकी निवृत्ति तो अप्रसङ्ग होनेसे ही सिद्ध है तब इस दशामें स्यात् शब्दका प्रयोग व्यर्थ ही है। यह कथन सत्य है । परन्तु अपने द्रव्य क्षेत्रादिकी अपेक्षासे कथंचित् इस प्रकार अनेकान्तरूप अर्थ शब्दसे भान होता है सो वह अर्थ किस प्रकारके शब्दसे भान होता है, ऐसा विचार उपस्थित होनेपर स्यात् शब्दका प्रयोग किया जाता है। और वह तिङन्तप्रतिरूपक अर्थात् सत्ता अर्थमें 'अस्' धातुका लिङ्लकारमें **'स्यात्'** ऐसा रूप होता है उसीके सदृश निपात है ॥

ननु स्याच्छब्दस्य द्योतकत्वपक्षे केन पुनश्शब्देनोक्तानेकान्तस्स्याच्छब्देन द्योत्यते इति चेत्-

शङ्का—यदि ऐसा कहो कि जब निपातोका द्योतकत्व पक्ष है तो किस शब्दसे कथित अनेकान्तरूप अर्थ स्यात् शब्दसे द्योतित होता है? क्योंकि द्योतकका तो यह ही अर्थ है कि किसी शब्दसे कथित अर्थको स्पष्ट रीतिसे प्रकाशित कर देना तो किस शब्दसे कथित अर्थको स्यात् प्रकाशित करता है? तो इसका उत्तर कहते है:—

अस्त्येव घट इत्यादिवाक्येनाभेदवृत्त्याऽभेदोपचारेण वा प्रतिपादितोऽनेकान्तस्स्याच्छब्देन द्योत्यत इति ब्रूम । सकलादेशो हि यौगपद्येनाशेषधर्मात्मक घटादिरूपमर्थं कालादिभिरभेद-वृत्त्याऽभेदोपचारेण वा प्रतिपादयति, सकलादेशस्य प्रमाणरूपत्वात् । विकलादेशस्तु क्रमेण भेदप्राधान्येन भेदोपचारेण वा सुनयैकान्तात्मक घटादिरूपमर्थं प्रतिपादयति। विकलादेशस्य नयस्वरूपत्वात्।

'अस्ति एव घटः' अपने द्रव्य क्षेत्र आदिकी विवक्षासे घट है ई है इत्यादि वाक्यसे द्रव्यत्व अर्थके आश्रयसे अभेदवृत्तिसे और पर्याय अर्थके आश्रयसे अभेदके उपचारसे कथित जो अनेकान्तरूप अर्थ है वही स्यात् शब्दसे द्योतित होता है क्योकि द्रव्यरूपसे घटकी सब दशामें अभेदवृत्ति है और पर्य्यायोंका परस्पर भेद होनेपर भी द्रव्यत्वरूपसे एकत्व होनेसे अभेदका उपचार है. इसमे **'अस्ति एव घटः'** इस वाक्यसे ही अनेकान्त अर्थ कथित है उसी अर्थको स्यात् शब्द प्रकाशित करता है। सकलादेश अर्थात् प्रमाणरूप सप्तभङ्गी काल आत्मस्वरूपादिद्वारा द्रव्यत्वरूप अर्थसे अभेदवृत्तिसे और पर्यायत्वरूप अर्थसे एकत्वके अध्यारोपसे अभेदके उपचार एक कालमें ही सत्त्व असत्त्वादि सम्पूर्ण धर्म्मस्वरूप घट आदि पदार्थोको प्रतिपादन करता है क्योंकि सकलादेश प्रमाणरूप है इस विषयको प्रथम सिद्ध कर चुके है । और विकलादेश अर्थात् नयरूप सप्तभङ्गी तो क्रमसे भेदकी प्रधानतासे अथवा भेदके उपचारसे नयसे एकान्तरूप घट पट आदि पदार्थोको प्रति-पादन करता है और विकलादेश नयरूप है यह वार्ता भी प्रथम सिद्ध हो चुकी है ॥

१ किसी शब्दसे कथित अर्थका प्रकाशक २ प्रकाशित ३ प्रकाशित ४ आपसमें घट आदिका ५ अनेक धर्मस्वरूप ६ कथन

कः पुनः क्रमः ? किं वा यौगपद्यम् ? इति चेदुच्यते । यदा तावदस्तित्वादिधर्माणां कालादिभिर्भेदविवक्षा, तदाऽस्त्यादिरूपैकशब्दस्य नास्तित्वाद्यनेकधर्मबोधने शक्त्यभावात्क्रम । यदा तु तेषामेव धर्माणां कालादिभिरभेदेन वृत्तमात्मरूपमुच्यते, तदैकेनाप्यस्त्यादिशब्देनास्तित्वादिरूपैकधर्मबोधनमुखेन तदात्मकतामापन्नस्य सकलधर्मस्वरूपस्य प्रतिपादनसम्भवाद्यौगपद्यम् ॥

पूर्व प्रसङ्गमें क्रम तथा यौगपद्यकी चर्चा कर आये है उनमें क्रम क्या पदार्थ है, और यौगपद्य भी क्या वस्तु है ? ऐसा प्रश्न करो तो उसका उत्तर कहते है—जब अस्तित्व तथा नास्तित्व आदि धर्मोंकी देश काल आदिसे भेदसे कथनकी इच्छा है तब अस्तित्व आदिरूप एक ही शब्दकी नास्तित्व आदिरूप अनेक धर्मोंके बोधन करनेमें शक्ति न होनेसे नियत पूर्वापर भाव वा अनुक्रमसे जो निरूपण है उसको 'क्रम' कहते है । और जब उन्ही अस्तित्व आदि धर्मोंकी काल आदि[1] द्वारा अभेदसे वृत्ति[2] कही जाती है तब एक अस्तित्व आदि शब्दसे भी अस्तित्वआदिरूप एक धर्मके बोधनके उपलक्षणसे[3] उस वस्तु रूपताको प्राप्त जितने धर्म है उनका प्रतिपादन एक समयमें सम्भव है इस प्रकारसे जो वस्तुके स्वरूपका निरूपण है उसको यौगपद्य[4] कहते है ।

के पुन कालादय. ? इति चेदुच्यते । काल, आत्मरूपम्, अर्थः, सम्बन्ध', उपकार', गुणिदेश, ससर्ग, शब्द', इति । तत्र स्यादस्त्येव घट इत्यत्र यादृशकालावच्छेदेन घटादावस्तित्वं वर्तते—तत्कालावच्छेदेन शेषानन्तधर्मा अपि घटे वर्तन्त इति तेषामेककालावच्छिन्नैकाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वं कालेनाभेदवृत्ति । यदेवास्तित्वस्य घटगुणत्वं स्वरूपं—तदेवान्यानन्तगुणानामपि स्वरूपमित्येकस्वरूपत्वमात्मरूपेणाभेदवृत्ति । य एव च घटद्रव्यरूपोऽर्थोस्तित्वस्याधारस्स एवान्यधर्माणामप्याधार इत्येकाधारवृत्तित्वमर्थेनाभेदवृत्ति । य एव चाविष्वग्भाव. कथंचित्तादात्म्यलक्षणोऽस्तित्वस्य सम्बन्धस्स एवानन्तधर्माणामपीत्येकसम्बन्धप्रतियोगित्वं सम्बन्धेनाभेदवृत्ति । य एव चोपकारोऽस्तित्वस्य स्वानुरक्तत्वकरणम् तच्च स्ववैशिष्ट्यसम्पादनं, यथा—नीलरक्तादिगुणानां नीलरक्ताद्युपरञ्जन नीलरक्तत्वादिगुणवैशिष्ट्यसम्पादनमेव, तदपि स्वप्रकारकधर्मिविशेष्यकज्ञानजनकत्वपर्यवसन्नम्, अस्तित्वस्य स्वानुरक्तत्वकरणं हि अस्तित्वप्रकारकघटविशेष्यकज्ञानजनकत्वम्, तादृशोपकार एव नास्तित्वादिभिरशेषधर्मै क्रियत इत्येककार्यजनकत्वमुपकारेणाभेदवृत्ति । यद्देशावच्छेदेन घटादावस्तित्वं वर्तते—तद्देशावच्छेदेनैव घटे नास्तित्वादिधर्मा', न तु कण्ठावच्छेदेनास्तित्व—पृष्ठावच्छेदेन नास्तित्वमिति देशभेद, इत्येकदेशावच्छिन्नवृत्तित्वं गुणिदेशेनाभेदवृत्ति । य एव चैकवस्त्वात्मनास्तित्वस्य ससर्गस्स एवापरधर्माणामपीत्येकसंसर्गप्रतियोगित्वं ससर्गेणाभेदवृत्ति' ॥ ननु—सम्बन्धससर्गयो को विशेष ? इति चेदुच्यते । कथंचित्तादात्म्यलक्षणे सम्बन्धेऽभेदप्रधानं भेदो गौण, ससर्गे तु भेद प्रधानमभेदो गौण', इति विशेष । कथंचित्तादात्म्यं हि कथचिद्भेदाभेदोभयरूपम् । तत्र भेदविशिष्टाभेदस्सबन्ध इत्युच्यते । अभेदविशि-

---

१ एक कालमें २ वस्तुस्वरूपकी स्थिति. ३ मिष. ४ एक कालीनत्व वा समान कालिकता.

ष्टभेदश्च संसर्ग इत्युच्यते । य एवास्तीति शब्दोऽस्तित्वधर्मात्मकस्य वस्तुनो वाचकस्स एवा-शेषानन्तधर्मात्मकस्यापि वस्तुनो वाचक इत्येकशब्दवाच्यत्व शब्देनाभेदवृत्ति । एवं काला-दिभिरष्टविधाऽभेदवृत्तिः पर्यायार्थिकनयस्य गुणभावे द्रव्यार्थिकनयप्राधान्यादुपपद्यते ।

काल आदि कौन है? यदि ऐसा प्रश्न किया जाय तो इसका उत्तर कहते है--काल १ आत्मरूप अर्थात् जिस स्वरूपसे वस्तुमें धर्म रहे वह स्वरूप २ अर्थ (घट आदि पदार्थ) ३ सम्बन्ध (अभेदकी प्रधानता जनानेवाला सम्बन्ध) ४ उपकार ५ गुणि-देश (पदार्थके जिस देशमे धर्म रहे वह देश) ६ ससर्ग (प्रधानतासे भेदको जनाने-वाला सम्बन्ध) ७ शब्द (वस्तुका वाचक शब्द) ८ इन आठ प्रकारसे धर्मोंकी अभेदरूपसे स्थिति रहती है ॥ उनमेंसे **'स्यादस्ति एव घटः'** किसी अपेक्षासे घट है. यहापर जिस कालमें घट आदि पदार्थमे अस्तित्व धर्म है, उसी कालमें घटमें रहने-वाले नास्तित्व तथा अवक्तव्यत्व आदि सम्पूर्ण धर्म भी रहते है इस रीतिसे उन सब अस्तित्व आदि धर्मोंकी एक घटरूप अधिकरणमे स्थिति कालद्वारा अभेदसे है । अर्थात् कालिक सम्बन्धसे सब धर्म अभिन्न है क्योकि समान कालमें ही सब धर्म विद्यमान है १ तथा जिस प्रकार अस्तित्वका स्वरूप घटका गुणत्व है ऐसे ही वही गुणत्वरूप अन्य अन्य अनन्त धर्मोका भी स्वरूप है. इस प्रकार एक घटरूप अधिकरणमे आत्मस्वरूपसे सब धर्म रहते है यह आत्मस्वरूपसे सब धर्मोंकी अभेदसे वृत्ति हुई २ जो घटरूप द्रव्य पदार्थ अस्तित्व धर्मका आधार है वही घट द्रव्य अन्य धर्मोका भी आधार है इस प्रकार एक आधारमे वृत्तिता अर्थसे अभेदवृत्ति है. ३ जो सर्वथा वा एकान्तरूपसे नही. किन्तु कथचित् अभेदरूप अस्तित्वका सम्बन्ध घटके साथ है वही कथचित् सम्बन्धरूपता अन्य सब धर्मोकी भी घटके साथ है. यह एक सम्बन्ध प्रतियोगितारूप सम्बन्धसे अ-भेदवृत्ति सब धर्मोंकी है । ४ तथा जो स्वानुरक्तत्वकरण अर्थात् अपने स्वरूपसहित होता तन्मयताका सम्पादन करनारूप उपकार अस्तित्वका घटके साथ है वही अपना वैशिष्ट्यसम्पादन एक कार्यजनकतारूप उपकार अन्य धर्मोका भी है और स्वानुरक्तत्व-करण अपने स्वरूपका वस्तुमें साहित्य सम्पादन करना है । जैसे नील रक्त आदि गुणोंका वस्तुमे नीलत्व रक्तत्व आदि धर्मसे अपने स्वरूपका उपराग करते है, वह उनका उपराग जिस वस्तुको नीलत्व तथा रक्तत्व आदि गुणोंसे युक्त करता है वह भी धर्म प्रकारक तथा वस्तुरूप जो धर्मी तद्विशेष्यक ज्ञानजनकतासे तात्पर्य्य रखता है, अर्थात् अस्तित्व आदि धर्म जिसमें विशेषण हो और जिसमे धर्म रहे वह वस्तु जिसमें विशेष्य हो ऐसा

---

१ घटका गुण होना जैसे अस्तित्व अपने गुणपनेसे है ऐसे ही अन्य धर्म भी है २ निजस्वरूप जिस स्वरूपसे धर्म वस्तुमें रहते है वही उनका निजका आत्मरूप है ३ स्थिति वा रहना ४ एक ही पदार्थमे सब धर्मोंकी स्थिति ५ एक सम्बन्ध प्रतियोगी अर्थात् विशेषण होके रहना ६ अपने स्वरूपसहित अथवा अपने स्वरूपमय वस्तुको करना ।

जो ज्ञान उस ज्ञानको उत्पन्न करनेरूप उपकार अस्तित्व आदि धर्म घट आदि वस्तुका करते है। **'घटः स्यादस्ति एव'** यहांपर अस्तित्वका स्वानुरक्तत्वकरणरूप उपकार क्या है कि अस्तित्व धर्म जिसमे विशेषण है और घट जिसमें विशेष्य है इस प्रकारके ज्ञानका जनक होना अर्थात् ऐसा ज्ञान उत्पन्न कर देना है ऐसा जिसमें ज्ञान धर्म विशेषण हो और धर्मी (वस्तु) विशेष्य हो उस ज्ञानको उत्पन्न करनेरूप वस्तुका उपकार नास्तित्व आदि सम्पूर्ण अन्य धर्म भी करते है तो इस रीतिसे एक कार्यजनकतारूप उपकारसे भी सब धर्मोकी अभेदसे वस्तुमें स्थिति हुई ५ तथा घट आदि पदार्थके जिस देशमें अपनी अपेक्षासे अस्तित्वधर्म है घटके उसी देशमें अन्यकी अपेक्षासे नास्तित्व आदि सम्पूर्ण धर्म भी है क्योकि घटके कण्ठदेशमे अस्तिता धर्म है और उसके पृष्ठदेश (भाग) में नास्तिता है ऐसा व्यवहार अथवा अनुभव नही है इस लिये देश भेद नही है । इस प्रकारसे गुणीके एक देशवृत्तितारूप गुणीके देशरूप अभेद सब धर्मोकी स्थिति है. ६ तथा जिस प्रकार एक वस्तुत्वस्वरूपसे अस्तित्वका घटमे संसर्ग है ऐसे ही एक वस्तुत्वरूपसे अन्य सब धर्मोका भी संसर्ग है इस रीतिसे एक संसर्ग प्रतियोगितारूप संसर्गसे अभेदवृत्ति सब धर्मोकी घट आदि वस्तुमे है ७ कदाचित् यह शङ्का करो कि सम्बन्ध तथा संसर्गमे क्या भेद है? तो इसका उत्तर कहते है—किसी अपेक्षासे तादात्म्यरूप सम्बन्धमें तो अभेद प्रधानतासे रहता है और भेद गौणतासे और संसर्गमें तो भेद प्रधानतासे रहता है और अभेद गौणतासे रहता है यही विशेष सम्बन्ध तथा संसर्गमे है। और सम्बन्धके विषयमे जो कथंचित् तादात्म्यरूपता कहा है वह तादात्म्य कथंचित् भेद अभेद उभयरूप है । उनमेसे भेदसहित अभेदको सम्बन्ध कहते है । यहापर भेदसहित अभेद कहनेसे ही सम्बन्धमे भेद विशेषण होनेसे गौण है और अभेद मुख्य है यह तात्पर्य्य सिद्ध होगया है । तथा अभेदसहित भेदको संसर्ग कहते

---

१ यहापर स्वपदसे अस्तित्व आदि धर्मका ग्रहण है घटके अनन्तर अस्ति आदि पद लगानेसे वह ऐसा ज्ञान कराते है कि हम (धर्म) विशेषण है और जिस वस्तुमे धर्म है वह विशेष्य है जैसे रक्त कमल ऐसा कहनेसे रक्तत्व धर्म अपने सहित कमलको सिद्ध करता है ऐसे ही अस्तित्व आदि धर्मभी अपने सहित घट आदि पदार्थको सिद्ध करते है ओर उसमे ये धर्म विशेषण तथा जिसमे धर्म है वह विशेष्य ऐसा ज्ञान उत्पन्न करादेना यही धर्मोका वस्तुके साथ उपकार है ओर इसी अपने सहित विशेषणविशेष्यभावका ज्ञान करादेना एक कार्यजनकतारूप उपकारमे सबकी अभेदसे वस्तुमे स्थिति है २ विशेष्यविशेषणभावसे स्थितिका ज्ञान उत्पन्न करादेना ३ जिसमे अस्तित्व आदि धर्म वा गुण रहें वह वस्तु ४ रहना वा स्थिति ५ जिस भागमे अस्तिता आदि धर्म रहते है वह गुणी अथवा धर्मीका भाग वा देश ६ भेदकी प्रधानताका सूचक सम्बन्ध ७ संसर्गका विशेषण होके वस्तुमे रहना ८ जिसके साथ वक्तव्य है उस वस्तुके साथ आत्मरूपता अर्थात् भेदका अभाव जो कथंचित् अभेदस्वरूप है ९ सम्बन्धमे भेदकी अप्रधानता १० परस्पर एक दूसरेसे विलक्षणता अथवा भेद ११ किसी अपेक्षासे भेद और किसी अपेक्षासे अभेद यह दोनोरूप

हैं। यहांपर भी अभेदसहित भेद इस कथनसे ही संसर्गमें अभेद गौण और भेद मुख्य है यह तात्पर्य सिद्ध होगया। तथा जो अस्ति शब्द अस्तित्वधर्मस्वरूप घट आदि वस्तुका भी वाचक[1] है। इस प्रकार एक शब्द वाच्यत्वरूपसे शब्दसे सब धर्मोंकी घट आदि पदार्थमें अभेदवृत्ति है. ८ इस पूर्वकथित रीतिसे पर्य्यायार्थिक[3] नयके गौण होनेपर द्रव्यार्थिक[4] नयकी प्रधानतासे काल आत्मस्वरूप तथा अर्थ आदि आठ प्रकारसे घट आदि पदार्थमें सब धर्मोंकी अभेदसे स्थिति रहती है।

द्रव्यार्थिकगुणाभावे पर्यायार्थिकप्राधान्ये तु नेयं गुणानामभेदवृत्तिस्सम्भवति। तथा हि—तत्र कालेन तावदभेदवृत्तिर्न सम्भवति, समकालमेकत्र नानागुणानां परस्परविरुद्धानामसम्भवात्, प्रतिक्षणं वस्तुनो भेदात्। सम्भवे वा तावदाश्रयस्य तावत्प्रकारेण भेदप्रसङ्गात्॥ नाप्यात्मरूपेणाभेदवृत्तिस्सम्भवति नानागुणानां स्वरूपस्य भिन्नत्वात्; स्वरूपाभेदे तेषां परस्परभेदस्य विरोधात्॥ नाप्यर्थेनाभेदवृत्ति, स्वाश्रयार्थस्यापि नानात्वात्, अन्यथा नानागुणाश्रयस्यैकत्वविरोधात्॥ नापि सम्बन्धेनाभेदवृत्ति, सम्बन्धस्यापि सम्बन्धिभेदेन भेददर्शनात्; यथा दण्डदेवदत्तसम्बन्धादन्यश्छत्रदेवदत्तसम्बन्ध॥ नाप्युपकारेणाभेद, अनेकगुणै क्रियमाणस्य चोपकारस्य प्रतिनियतरूपस्यानेकत्वात्, अनेकैरुपकारिभि क्रियमाणस्योपकारस्यैकत्वविरोधात्॥ नापि गुणिदेशाभेद, गुणिदेशस्यापि प्रतिगुणं भेदात्, तदभेदे भिन्नार्थगुणानामपि गुणिदेशाभेदप्रसङ्गात्॥ नापि ससर्गेणाभेदः, संसर्गस्यापि ससर्गिभेदेन भेदात्, तदभेदे ससर्गिभेदविरोधात्॥ नापि शब्देनाभेद, शब्दस्यार्थभेदेन भिन्नत्वात्, सर्वगुणानामेकशब्दवाच्यतायां सर्वार्थानामेकशब्दवाच्यातापत्त्या शब्दान्तरवैफल्यापत्तेः॥ एवं तत्वतोऽस्तित्वादीनामेकत्रवस्तुन्यभेदवृत्तेरसम्भवे कालादिभिर्भिन्नानामपि गुणानामभेदोपचार क्रियते।

और द्रव्यार्थिक नयकी गौणता तथा पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतामें तो पदार्थमें धर्मोंकी काल आदिद्वारा अभेदरूपसे स्थितिका सम्भव नही है॥ इसी असम्भवताको दर्शाते है जैसे—पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे उन आठों प्रकारोंमेंसे प्रथमकाल अभेदसे धर्मोंकी स्थिति वस्तुमें सम्भव नही होती, क्योंकि परस्परविरुद्ध नानागुण पर्यायोंका एक ही कालमें होना असम्भव है और प्रतिक्षणमे वस्तुके परिणाम[5] वा दशाके परिवर्तनसे वस्तुके भेद होनेसे भी अभेदवृत्तिका असम्भव दृढ है। और एक कालमें गुणोंका सम्भव माननेसे भी उन गुणोंके आश्रय[6] होनेसे जितने गुणोंका वह द्रव्य आश्रय होगा उतनेही प्रकारके भेद उस द्रव्य या पदार्थके हो जाएगे क्योंकि गुण वा धर्मके भेदसे गुणी[7]

१ कहनेवाला वा प्रतिपादक शब्द तथा अर्थमे वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध रहता है उसमे अर्थ वाच्य और शब्द वाचक होता है २ जो कहा जाय ३ मृतिका आदि द्रव्यमें पिंड कपाल घट आदि पर्य्याय (दशा) मात्रसे प्रयोजन रखनेवाला ४ पर्यायकी अपेक्षा न करके केवल मृत्तिका वा जीवआदि द्रव्यसे प्रयोजन रखनेवाला ५ वस्तुके स्वरूपका बदलना, प्रतिक्षणमे सूक्ष्मरूपसे पदार्थ बदलता है इससे वह किसी प्रकारसे भिन्न माना जाता है. ६ आधार जिसमे गुण वा धर्म रहते है ७ गुणका आधार पदार्थ

वा धर्म्मीके भी भेद माने जाते है इसी रीतिसे आत्मरूप अर्थात् धर्मके स्वरूपसे भी धर्मोंकी पदार्थमें अभेदवृत्ति नहीं है क्योंकि पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतामे नाना प्रकारके गुणोंके स्वरूप भिन्न २ है । और गुणत्व अथवा धर्मत्व स्वरूपका अभेद माननेपर भी अस्तित्व नास्तित्व आदि धर्मोका परस्परभेद होनेसे विरोध स्पष्ट ही है। ऐसे ही अर्थरूपसे भी धर्मोंकी वा गुणोंकी अभेदवृत्ति नहीं है. क्योंकि परस्परभिन्न नाना प्रकारके गुणोंके आश्रय पदार्थ भी नाना प्रकारके भेदसहित हो जाते है, गुणोंके भेदसे गुणीका भी भेद युक्तिसिद्ध ही है, यदि ऐसा न माना जाय तो नाना प्रकारके गुणोंके आश्रयमें द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे जो एकत्व माना जाता है उसका विरोध होगा क्योंकि गुणोंके भेदसे भी यदि पदार्थमें अभेद है तो अन्य प्रकारसे एकत्व माननेकी क्या आवश्यकता है? इस प्रकार सम्बन्धसे भी अभेदवृत्ति नही है, क्योंकि सम्बन्धीके भेदसे सम्बन्धका भी भेद देखा जाता है, जैसे दण्ड तथा देवदत्तके सयोग सम्बन्धसे छाता तथा देवदत्तका संयोग सम्बन्ध भिन्न है । ऐसे ही उपकाररूपसे भी अभेदवृत्ति वस्तुमें गुणोंकी नही है, क्योंकि अनेक गुणोंसे कियेहुये वा क्रियमाण अपने २ नियतरूपसहित उपकार भी अनेक है । और यदि उपकारोंकी अनेकता न मानी जाय तो अनेक उपकारियोंसे जो उपकार किया जाता है उसमें जो एकत्व माना गया है. उसका विरोध आवेगा। तथा गुणीके देशसे भी गुणोंकी वस्तुमे अभेदवृत्ति नही है, क्योकि प्रत्येक गुणकी अपेक्षासे गुणीके देशका भी भेद माना गया है, और यदि प्रत्येक गुणके भेदसे गुणीके देशका अभेद मानो तो भिन्न पदार्थके जो गुण है उनके गुणीके देशका भी अभेदप्रसङ्ग हो जायगा । इसी प्रकारसे पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे ससर्गसे भी गुणोकी अभेदवृत्ति नहीं है, क्योंकि प्रतिपर्याय ससर्गीके भेदसे ससर्गका भी भेद है, और यदि ससर्गका भेद न माना जाय तो प्रत्येक पर्यायमें जो ससर्गीका भेद अनुभवसिद्ध ज्ञात होता है उसका विरोध आवेगा । इसी रीतिसे शब्दसे भी अभेदवृत्ति नही है। क्योंकि अर्थके भेद होनेसे शब्दका भी भेद अनुभवसिद्ध है, और यदि अस्तित्व नास्तित्व आदि सब गुणोंकी एकशब्दवाच्यता मानोगे तो सब अर्थोकी भी एक शब्दवाच्यता ही जाननेसे अन्य भिन्न २ जो शब्दोंके प्रयोग किये जाते है वे सब व्यर्थ हो जाएगे क्योकि जब एक ही शब्द सब अर्थोंको कह सकता है तब अन्य

---

१ धर्मका आधारभूत पदार्थ २ धर्मोका निजस्वरूप ३ सब गुणोंमें अनुगतरूपसे रहनेवाला गुणपना. ४ सब धर्मोमे अनुगत धर्मपना ५ सब धर्मोका आश्रय पदार्थ वा द्रव्य जैसे घट अथवा जीव. ६ जिसमे सम्बन्ध रहता है वह पदार्थ ७ जिनमे अस्तित्व आदि उपकार है वे घट आदि वस्तु ८ जिस पदार्थका निरूपण विवक्षित है उससे भिन्न जैसे घटकी अपेक्षा भिन्न जीव. ९ गुणीके देशत्वरूपसे भेदाभाव १० अस्तित्व अर्थसहित घटशब्दसे नास्तित्व अर्थसहित घटशब्द भिन्न है ११ अर्थके भेदसे शब्द पर्यायकी अपेक्षासे है

शब्दोंकी क्या आवश्यकता है ॥ इस रीतिसे पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतामें यथार्थमें-ही अस्तित्व नास्तित्व आदि अनेक गुणोंकी एक वस्तुमें अभेदसे स्थितिका असम्भव होनेपर काल तथा आत्मरूप आदिसे परस्पर भिन्न भी गुणोंका कथचित् अभेदका उपचार किया जाता है ।

एव निरूपिताभ्यामभेदवृत्त्यभेदोपचाराभ्यामेकेनास्तिनास्त्यादिशब्देनोपात्तस्याशेषधर्मात्मकस्य घटादिवस्तुन स्यात्कारोद्योतकस्समवतिष्ठते । इत्येव पदार्थो निरूपित ॥

इस प्रकारसे पूर्व कथित द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे अभेदवृत्ति तथा पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे अभेदोपचार इन दोनोंके द्वारा, एक अस्तिसे तथा एक अस्ति आदि शब्दसे कथित जो सम्पूर्ण अस्तित्व नास्तित्व आदि धर्ममय घट आदि वस्तु है उनकी अनेकान्तस्वरूपताद्योतक हो कर **'स्यादस्ति घटः'** इत्यादि वाक्यमे स्यात् शब्द स्थित रहता है । इस प्रकार सप्तभङ्गोंके स्यात् तथा अस्तिआदि पक्षका अर्थ निरूपण किया गया ।

वाक्यार्थो निरूप्यते । स्यादस्त्येव घट , स्यान्नास्त्येव घट', इत्यस्य स्वरूपाद्यवच्छिन्नास्तित्वाश्रयो घट , पररूपाद्यवच्छिन्ननास्तित्वाश्रयो घट , इतिच बोध । घटादिरूपे वस्तुनि स्वरूपादिना सत्त्वम् पररूपादिनाऽसत्त्वञ्चाङ्गीकरणीयम् । अन्यथा वस्तुत्वस्यैव विलयापत्ते स्वपररूपोपादानापोहनव्यवस्थाप्य हि वस्तुनो वस्तुत्वम् ।

अब इसके अनन्तर वाक्यार्थका निरूपण करते है । उनमे **स्यादस्त्येव घटः** तथा, **स्यान्नास्त्येव घटः,** अपने कम्बुग्रीवादिरूप घटत्वसे अवच्छिन्न जो अस्तित्व धर्म है उसका आश्रय वा आधार घट, यह प्रथम वाक्यका, और परकीय पटत्व आदिरूपसे अवच्छिन्न नास्तित्वका आश्रय घट, यह द्वितीय वाक्यका अर्थ है । भावार्थ यह है कि, घट है ऐसे वाक्यसे जिस प्रकार घटसे कम्बुग्रीव आदि स्वरूपका भान होता है वैसे ही यह पट आदि अन्यवस्तु नही है किन्तु घट है इस रीतिसे अन्यका निषेध भी भासता है, अत एव अन्यपदार्थके रूपादिसे नास्तित्वका आश्रय घट है यह विषय अर्थात् अपने रूपादिसे सत्त्व और अन्यके रूपादिसे असत्त्व सूक्ष्मरूपसे अन्त करणमे भासता है, उसका अनुसन्धान कुशल बुद्धिवालोको होता है । क्योकि घट आदि समस्त वस्तुरूपमें अपने रूप आदिसे सत्त्व तथा अन्यके रूप आदिसे असत्त्व भी अवश्य अङ्गीकार करना चाहिये । इसके विरुद्ध अर्थात् सत्त्व अथवा असत्त्व इनमेंसे एक ही वस्तुका स्वरूप माननेसे वस्तुका जो वस्तुत्व है उसका विलय हो जायगा । क्योकि अपने स्वरूपके ग्रहण तथा अन्यके स्वरूपके त्यागसे ही वस्तुके वस्तुत्वका व्यवस्थापन किया जाता है ।

---

१ यथार्थमें पर्यायोका परस्पर भेद रहते भी एक द्रव्य मानके अभेदका उपचार (उपलक्षण). २ प्रकाशक, निपातोंके द्योतकत्वपक्षमे कृत अर्थका प्रकाश मात्र स्यात् शब्दसे है ३ पदसमुदायका अर्थ । पदोंके समूहको वाक्य कहते हैं प्रथम पदोका अर्थ कहा अब वाक्यका अर्थ कहते है ४ अपने धर्मद्वारा अन्य पदार्थोंसे पृथक् किया हुआ है ५ शङ्खके आकारके सदृश गलासहित ६ नाश वा सबकी अभावरूपता ७ वस्तुमें रहनेवाला उसका यथार्थ स्वरूप

तत्र घटस्य किं स्वरूपम् ? किंवा पररूपम् ? इति चेत्, –घट इत्यादिबुद्धौ प्रकारतया भासमानो घटपदशक्यतावच्छेदकीभूतसदृशपरिणामलक्षणो यो घटत्वनामको धर्मस्स घटस्य स्वरूपं, पटत्वादिकं पररूपम्। तत्र घटत्वादिरूपेणेव पटत्वादिरूपेणापि घटस्य सत्त्वे घटस्य पटात्मकत्वप्रसङ्ग, पटत्वादिनेव घटत्वादिनाप्यसत्त्वे सर्वथा शून्यत्वापत्ति, शशविषाणवत्।

अब यहापर घटका अपना निजस्वरूप क्या है, और परस्वरूप क्या है। यदि ऐसी शका करो तो उत्तर यह है–घट, इत्यादि बुद्धिमें विशेषरूपसे भासता हुआ जो घटपदका शक्यतावच्छेदक[1] अर्थात् जो सब घटमें अनुगतरूपसे घटपदकी शक्तिसे कहा जाता है वही घटत्वरूप धर्म घटका स्वरूप है और पटत्व आदिरूप घटके पररूप है यहापर अपने घटत्वस्वरूपसे जैसे घटका सत्त्व है ऐसे ही परकीय पटत्वरूपसे भी यदि सत्त्व ही मानोगे और अन्यरूपसे भी अस्तित्व मानोगे तो घट भी पटस्वरूप हो जायगा। क्योंकि घटका जैसे अपने घटत्वस्वरूपसे सत्त्व है ऐसे परकीय पटत्वस्वरूपसे सत्त्व है तो दोनोंके सत्त्व स्वरूपमे भेद न होनेपर घट पट हो जायगा। और घटका घटसे अन्य पटत्व आदि स्वरूपसे जैसे असत्त्व मानते है ऐसे ही यदि अपने घटत्वस्वरूपसे भी असत्त्व[2] ही मानो तो शशशृङ्गके तुल्य सर्वथा शून्यवादका प्रसङ्ग हो जायगा।

अथवा–नामस्थापनाद्रव्यभावाना मध्ये यो विवक्षितस्तत्स्वरूपं, इतरत्पररूपम्। तत्र विवक्षितेन रूपेणास्ति अविवक्षितेन नास्ति। यदि विवक्षितेनापि रूपेण नास्ति, तर्हि शशविषाणवदसत्त्वमेव घटस्य प्राप्नोति। यदि चाविवक्षितेनापि रूपेणास्ति, तदा नामादीनां परस्परभेदो न स्यात्।

अथवा नाम[3] स्थापना[4] द्रव्य[5] तथा भाव[6] इन चार निक्षेपोंमेंसे जो विवक्षित[7] है वही घटका स्वरूप है, और उससे भिन्न पररूप है। उसमें विवक्षित रूपसे तो घटका अस्तिस्वरूप है और अविवक्षित रूपसे नास्तिस्वरूप है। क्योकि यदि विवक्षित स्वरूपसे घटका नास्ति स्वरूप ही माना जाय तो शशशृङ्गके तुल्य घटका असत्त्व[8] ही प्राप्त होता है। और यदि अविवक्षित रूपसे भी अस्ति[9] ही घटका स्वरूप मानो तो नाम स्थापना आदिका परस्पर भेद नही होगा, क्योंकि यदि विवक्षित तथा अविवक्षित दोनोंरूपसे सत्त्व ही स्वरूप है तब सत्त्वरूप जैसे नाममे है वैसे ही स्थापना आदिमें भी है तो परस्पर भेद न रहा।

---

१ जो पदकी शक्तिसे कहा जाय उसको शक्य कहते है और शक्यमे रहनेवाला और अन्यसे उस वस्तुको पृथक्कारक जो धर्म है उसको शक्यतावच्छेदक कहते है जैसे घटका घटत्व २ सत्ताका अभाव निज तथा अन्यके स्वरूपसे पदार्थका सत्त्व माननेसे अभाव पदार्थका स्वरूप होगा तो वह खरगोशके सीगके तुल्य असत् ही होजायगा ३ पदार्थके गुणद्रव्यादि न रखके लोकव्यवहारके लिये नियुक्त जो सज्ञा है उसको नामनिक्षेप कहते है जैसे नाम जीव वा नाममात्र घट ४ काष्ठ पाषाण धातु वा चित्रकर्मेमे वही यह पुरुष आदि है ऐसा जो स्थापित किया जाता उसको स्थापनानिक्षेप कहते है, जैसे प्रतिमा वा चित्र घट आदि स्थापनाजीव वा स्थापनाघट ५ वस्तुके गुणोंसे जो युक्त है वा गुणोंके परिणामको प्राप्त है वा होगा ६ जैसे राजाके पुत्रमें राजा व्यवहार वा पिण्डदशामे घट. ७ कथन करनेको इष्ट ८ असत्व ९ साचे

अथवा–घटत्वावच्छिन्नेषु मध्ये यादृशघट परिगृह्यते,[१] तन्निष्ठस्थौल्यादिधर्मः स्वरूपं, इतरघटादिव्यक्तिवृत्तिधर्म एव पररूपम् । तत्र तादृशस्वरूपेणास्ति, पररूपेण नास्ति । स्वरूपेणाप्यस्तित्वानङ्गीकारेऽसत्त्वप्रसङ्ग. पूर्ववत् । एवमग्रेऽपि । तादृशो घटो यदि निरुक्तपररूपेणाप्यस्ति, तदा सर्वघटानामैक्यप्रसङ्गात्सामान्याश्रयव्यवहारविलोपापत्ति[२] ।

अथवा घटत्वसे अवच्छिन्न, अर्थात् घटत्वधर्मसे अन्य पदार्थोंसे पृथक् किये सब घटोंमेंसे विवक्षित प्रसङ्गमें गृहीत जिस प्रकारका घट अनुभूत होता है उस घटमें रहनेवाले जो स्थूलता आदि धर्म है वही उस घटका स्वकीयरूप है और उस घटसे अन्य जो घट आदि पदार्थमें रहनेवाला धर्म है वह उसका पररूप है वहांका भी अपने स्वरूपनिष्ठ जो स्थूलतादि धर्मरूप है उस स्वरूपसे अस्तित्व और अन्य घट आदिके रूपसे नास्तित्वका आश्रय घट है, क्योंकि अपने रूपसे भी यदि अस्तित्वका आश्रय नहीं अङ्गीकार करोगे तो पूर्वके सदृश घटके असत्वका प्रसङ्ग हो जायगा । इसी प्रकार आगे भी समझलेना अर्थात् जो घट अनुभूत होता है उस घटका अन्य घटके रूपसे भी यदि अस्तित्व हि मानो तो सब घटोंकी एकता हो जायगी, क्योकि सबके स्वरूपसे सबमे अस्तिता है तो कोई भेद न रहा, और इस रीतिसे सामान्यके आश्रय जो व्यवहार है उसका लोप ही हो जायगा, जब सब एक ही है तो अनेकमें अनुगत धर्म भी न रहा ।

अथवा–तस्मिन्नेव घटविशेषे कालान्तरावस्थायिनि पूर्वोत्तरकुसूलान्तकपालाद्यवस्थाकलाप पररूप, तदन्तरालवृत्तिघटपर्यायस्स्वरूप, तेन रूपेणास्ति । इतररूपेण नास्ति । यदि कुसूलान्तकपालाद्यात्मनापि घटोऽस्ति, तदा घटावस्थाया घटपर्यायस्येव कुसूलादिपर्यायस्याप्युपलब्धिप्रसङ्ग । कुसूलाद्यवस्थायामपि घटसत्त्वे घटपर्यायोत्पत्तिविनाशार्थ गुरुप्रयत्नवैफल्य च । एवं–अन्तरालवृत्तिघटपर्यायात्मनापि यदि घटो नास्ति, तदा तत्काले जलाहरणादिरूपं तत्कार्यं नोपलभ्यते ।

अथवा कालान्तरमें भी रहनेवाले उसी घटमें पूर्व तथा उत्तर कालमें जो पिण्ड कुशूल तथा कपाल आदि अवस्था समुदाय है वह सब घटका पररूप है, और पूर्व तथा उत्तर कालमें रहनेवाला जो पिण्ड कपाल आदि समुदाय है उस समुदायमें रहनेवाला जो केवल घट पैर्याय है वह घटका स्वरूप है । उस अपने रूपसे अस्ति तथा अन्य पूर्वोत्तर कालवर्त्ती पिण्डादि पर्यायोंसे नास्ति घटका स्वरूप है । और यदि कॅपालसे आदि लेके कुशूलान्तसमुदायरूपसे भी अस्ति ही घटकी मानोगे तो जैसे घट दशामें घटकी प्राप्ति है ऐसे ही पिण्ड कपाल आदि पर्याओंकी प्राप्तिका प्रसङ्ग होगा अर्थात् जैसे घट दशामें घट

---

१ भासता है. २ जो घट जाननेको इष्ट है वही घट, हर एक वस्तुमें बिजातीय सजातीय तथा स्वगत भेद रहता है, उनमेंसे प्रथम विजातीय पट आदिको पररूप मानके भेद सिद्ध किया, अनन्तर समान जातिवाले अन्य घटोंसे, अब अपने ही में जो अन्य पर्याय है उनको पररूपके भेद सिद्ध करते हैं ३ घटदशा प्रथम गीली मृत्तिकामे पिण्ड पर्याय पुन लम्बासा कुशूल पर्याय पुन घट पर्याय. ४ घटके दो भाग जो घटमें जुडे रहते है

पर्यायका भान होता है ऐसे ही घटके पूर्व तथा उत्तरमें जो पर्याय है उनका भी भान होगा, और उन पर्यायोंका भान तो घट दशामें लोकमें प्रसिद्ध नही है। और इसी प्रकार पिण्ड आदि दशामें घटकी सत्ता भी भासेगी तो जब पिण्ड कपाल आदि सब पर्यायोंमे घटका सत्त्व है तब पिण्ड पर्यायकी उत्पत्ति तथा अन्य पर्यायोंके नाशार्थ जो महा प्रयत्न किया जाता है वह सब व्यर्थ होगा। और इसी प्रकार यदि पिण्ड आदिसे लेके कपालान्त समुदायके मध्यमें जो घट पर्याय है उस पर्यायरूपसे भी यदि घटका नास्तित्व-रूप मानोगे अर्थात् निजरूपसे नास्तित्वरूप मानो तो घटपर्यायरूपसे भी घट नही है यह सिद्ध हुआ, तो उस कालमें घटसे जलका आनयन तथा धारण कार्य होते है वे न होने चाहियें और जल आनयन आदि कार्य्य होते तो है, इससे यह निश्चय होता है कि घटपर्याय अपने रूपसे अस्तित्वका आश्रय है और अन्य पूर्वोत्तर पर्यायोके रूपसे नास्तित्वका आश्रय है।

अथवा–घटादौ प्रतिक्षणं सजातीयपरिणामो जायत इति तावत्सिद्धान्तसिद्धम्। तत्र ऋजु-सूत्रनयापेक्षया वर्तमानक्षणवृत्तिघटपर्याय स्वरूपम्, अतीतानागतघटपर्याय एव पररूपम्। तत्क्षणवृत्तिस्वभावेन सता घटोस्ति, क्षणान्तरवृत्तिस्वभावेन नास्ति, तथा प्रतीते। तत्क्षणवृ-त्तिस्वभावेनेव क्षणान्तरवृत्तिस्वभावेनाप्यस्तित्वे एकक्षणवृत्त्येव सर्वं स्यात्। क्षणान्तरवृत्ति-स्वभावेन तत्क्षणवृत्तिस्वभावेनाप्यस्तित्वाभावे घटाश्रयव्यवहारस्यैव विलोपापत्ति। विनष्टानु-त्पन्नघटव्यवहाराभावात्।

अथवा घट आदि सब पदार्थोमें प्रत्येक क्षणमे सजातीय परिणाम[1] होता रहता है, यह विषय सिद्धान्तसे सिद्ध है उसमें ऋजुसूत्रनयकी[2] अपेक्षासे वर्त्तमान क्षणमें रहने-वाला जो घटका पर्याय है वह घटका निजरूप है तथा भूत और भविष्य[3] अर्थात् जो होगये और होंगे वे सब पर्याय घटके पररूप है। इसलिये उसी घटपर्यायदशाके वर्त्तमान क्षणमें रहनेवाला जो घटका स्वभाव है उस स्वभावसे घट है॥ और वर्त्तमान क्षणमे भिन्न भूत वा भविष्य क्षणवृत्ति जो स्वभाव है उस रूपसे घट नही है क्योंकि अपने स्वभावसे सत्त्व और अन्यके स्वभावसे असत्त्व ही वस्तुका स्वरूप अनुभवमे आता है। और वर्त्तमान क्षणमें रहनेवाले स्वभावसे जैसे घटका अस्तित्व माना जाता है ऐसे ही यदि अन्य क्षणमे रहनेवाले स्वभावसे भी अस्तित्व मानो तो सब स्वभाव एक क्षणवृत्ति हो जायगा। क्योंकि सब क्षणमें रहनेवाले स्वभावसे जो अस्तित्व है वही अस्तित्व एक क्षणमें है तो कुछ भेद नही है, इसलिये सब स्वभाव एक क्षणमें रहनेवाले हो जाएगे। तथा वर्त्तमान क्षणसे भिन्न अन्य क्षणमें रहनेवाले स्वभावरूपसे जैसे वर्त्तमान अस्तित्वका अभाव माना जाता है ऐसे ही

---

१ पदार्थके स्वरूपका बदलना प्रत्येक पदार्थका निजस्वरूप प्रतिक्षण कुछ न कुछ रूपान्तर होता रहता है वही दूसरे रूपकी प्राप्तिका परिणाम है २ केवल वर्त्तमान क्षणमे रहनेवाले पर्यायका ग्राही नय ३ घटकी आगामी दशामें रहनेवाले

यदि घटरूप पर्यायके वर्तमान क्षणमें रहनेवाले स्वभावसे भी अस्तित्वका अभाव मानो तो घटके आश्रयसे जो जलानयन तथा जलधारण आदि व्यवहार है उसका सर्वथा लोप हो जायगा, क्योंकि जो घट उत्पन्न होके नष्ट हो गये अथवा अभी जो उत्पन्न ही नहीं हुये उनके साथ घटका जलानयन तथा धारण आदि व्यवहारका अभाव है।

अथवा—तस्मिन्नेव तत्क्षणवर्तिनि रूपादिसमुदायात्मके घटे पृथुबुध्नोदराद्याकार[२] स्वरूपम्, इतराकारः पररूपम्। तेन पृथुबुध्नोदराद्याकारेण घटोस्ति, इतराकारेण नास्ति; पृथुबुध्नोदराद्याकारसत्त्वे घटव्यवहारसत्त्वं तदभावे तदभाव इति तादृशाकारनियतत्वात्तद्व्यवहारस्य पृथुबुध्नोदराकारेणाप्यस्तित्वाभावे घटस्यासत्त्वापत्तिः, इतराकारेणाप्यस्तित्वे तादृशाकारशून्ये पटादावपि घटव्यवहारप्रसंग ॥

अथवा उसी घटपर्यायमें उसी क्षणमें रहनेवाले रूप आदिके समूह स्वरूप घटमें जो विशालवृक्षके मूलके समान उदर आदि आकार है वह घटका स्वरूप है, और उस विशाल गोल उदराकारसे भिन्न परका रूप है। इसलिये उस विशाल तथा गोल उदर आदि अपने आकारसे घट है, और अन्य आकारसे नहीं है विशाल तथा गोल उदर आकारकी सत्ताहीमें घटके व्यवहारकी भी सत्ता है, और उस आकारके न होनेमें घटका व्यवहार भी नहीं होता, क्योंकि उसी प्रकारके विशाल गोल आकारके साथ ही घटका व्यवहार नियत है, न कि उसके अभावमें। और उस पृथुबुध्न[३] उदर आकारसे भी यदि अस्तित्वका अभाव मानो तो घटका ही असत्त्व हो जायगा, और उस घटके विशाल गोल उदर आदि आकारसे भिन्न आकारसे भी यदि घटका सत्त्व मानोगे तो घटके पूर्वोक्त आकारसे शून्य पट आदिमें भी घटके व्यवहारका प्रसङ्ग होगा, क्योंकि घटके वास्तविक आकार न होनेपर भी जब घटकी सत्ता मानी गई तब घटका व्यवहार भी होना उचित ही है।

अथवा—रूपादिविशिष्टो घटश्चक्षुषा गृह्यते इत्यस्मिन्व्यवहारे रूपमुखेन घटो गृह्यत इति रूपं स्वरूपं रसादिपररूपम। तत्र रूपात्मनास्ति, चक्षुरिन्द्रियमात्रग्राह्यत्वात्। यदि चक्षुर्जन्यज्ञानविषयत्वं रसस्याप्यंगीक्रियते, तदा रसनादीन्द्रियकल्पना व्यर्था। यदि च रसादेरिव रूपस्यापि चक्षुरिन्द्रियजन्यज्ञानविषयता न स्यात्तदा घटस्यैवाग्रहणप्रसग, रूपादिज्ञाननियतत्वात् घटादिज्ञानस्य।

अथवा रूप आदि गुणसहित घट नेत्र इन्द्रियसे जानाजाता है इस घटके ग्रहण देखने वा जाननेरूप व्यवहारमें रूपके द्वारा नेत्र इन्द्रियसे घट देखा जाता है तो वह घटका श्याम अथवा रक्त जो रूप है वही घटका निजस्वरूप है और उस रूपसे भिन्न जो रस आदि गुण है वह पररूप है इनमेंसे अपने रूपमय स्वरूपसे तो घट है, क्योंकि रूपसहित घटका ग्रहण केवल नेत्र इन्द्रियसे होता है। और नेत्र इन्द्रियसे उत्पन्न ज्ञानका

१ नाशको प्राप्त जैसे नष्ट घटमें अस्तिताका अभाव है ऐसे ही घटके वर्तमान स्वभावसे भी माननेमें दोष आवेगा. २ घटका तथा गोलाई लिये उदररूप आकार, यही यथार्थ घटका स्वरूप है ३ विशाल तथा वृक्षके मूलके तुल्य आकार

विषय रसको भी स्वीकार करो, अर्थात् नेत्र इन्द्रियके ज्ञानसे रसका भी ज्ञान हो जाय तो रसना इन्द्रियकी कल्पना ही निष्फल होगी। और जैसे नेत्र इन्द्रियके ज्ञानसे रसका ज्ञान नहीं होता ऐसे ही नेत्र इन्द्रियके ज्ञानसे रूप भी न जाना जाय तो रूपसहित घटका ज्ञान-ही न होगा, क्योंकि घट आदि पदार्थका नेत्र इन्द्रियसे जो ज्ञान होता है वह रूप आदि ज्ञानके साथ नियत है, अर्थात् नेत्र इन्द्रियद्वारा घटका ज्ञान उसके रूपके ज्ञानके साथ ही होता है न कि रूपके विना।

अथवा–शब्दभेदे ध्रुवोऽर्थभेद इति घटकुटादिशब्दानामप्यर्थभेदस्समभिरूढनयार्पणात्। घटनात् घटः–कौटिल्यात्कुट इति तत्क्रियापरिणतिक्षण एवशब्दस्य वृत्तिर्युक्ता। तत्र घटन-क्रियाविषयकर्तृत्वं स्वरूपम्, इतरत्पररूपम्। तत्राद्येनास्ति, इतरेण नास्ति। इत्यादिरीत्या स्वरूपपररूपभेदा ऊह्याः॥

अथवा शब्दके भेद होनेपर अवश्य ही अर्थका भेद होता है, नाना अर्थग्राही सैम-रूढनयकी अपेक्षासे घट कुट आदि पर्य्यायवाचक शब्दोंका भी अर्थ भेद माना गया है, जैसे इन्द्र, शक्र आदि शब्द एक व्यक्तिके वाचक होनेपर भी "इन्दनात् इन्द्र. शक्रनात् शक्रः" ऐश्वर्यसहित होनेसे इन्द्र और शत्रुओंके पराजय आदिमें समर्थ होनेसे शक्र कहे जाते है ऐसे ही यहांपर भी "घटनात् घट" और "कौटिल्यात् कुट" जलधारण आदि क्रियामे समर्थ होनेसे घट तथा कौटिल्य वक्रता आदि गुणके सम्बन्धसे कुट कहा जाता है, इस प्रकार जिस क्रियाका पैरिणाम जिस क्षणमें होरहा है उसी क्षणमें उस क्रियाके अनुकूल अर्थवाचक ही शब्दकी प्रवृत्ति भी योग्य है न कि अन्य शब्दकी। इसमें घटत्व अर्थात् जलादि धारणरूप जो क्रिया है उस क्रियाके विषयमें जो कर्त्तापन "कर्तृता" है वह घटका निजस्वरूप है। और उससे भिन्न परका रूप है। इनमेंसे प्रथम अर्थात् घटन क्रियाके कर्त्तृतारूपसे घट है। और अन्यरूपसे नही। इस प्रकार पूर्वकथित रीतिके अनुसार और भी स्वरूप तथा पररूपके भेदोंकी कल्पना स्वय करलेना।

एव घटस्य स्वद्रव्यं मृद्द्रव्यं, परद्रव्यं सुवर्णादि। घटो मृदात्मनास्ति, सुवर्णाद्यात्मना नास्ति। घटस्य स्वद्रव्यात्मनेव परद्रव्यात्मनापि सत्त्वे घटो मृदात्मको न सुवर्णात्मक इति नियमो न स्यात्। तथा च द्रव्यप्रतिनियमविरोध.।

इसी प्रकार मृत्तिकारूप द्रव्य घटका स्वद्रव्य अर्थात् निज अपना द्रव्य है, और सुवर्ण

---

१ जो रसना (जिह्वा) इन्द्रियसे जानाजाय जैसे मीठा तीखा कटु आदि २ जिससे मिष्ट तिक्त आम्ल तथा कटु आदि रसका स्वाद जानाजाता है ३ नाना अर्थोंको कहके किसी विशेष अर्थका रूढिसे ग्रहण करानेवाला नय जैसे गो शब्द इन्द्रिय पृथिवी किरण आदि अनेक अर्थोंके कहनेपर भी पशुमें रूढ है, अथवा, शब्दके भेदमें अवश्य अर्थभेद ग्राहक जैसे ऐश्वर्यसे इन्द्र शकनसे शक्र पुरके विदारणसे पुरन्दर ऐसे ही यहा भी घटन क्रियासे घट, कुटन (कौटिल्य)से कुट. ४ जो क्रिया जिस समयमें होरही वही उसका परिणाम है ५ जो पदार्थ जिस द्रव्यसे बना है वह उसका स्वरूपवन्त द्रव्य है, जब मट्टीका घट है तब उसका द्रव्य मट्टी है और सुवर्ण आदि परद्रव्य हैं, और जब वह सुवर्ण वा पित्तल आदिसे बना है तब सुवर्ण ही वा पित्तल आदि ही उसके स्वद्रव्य हैं

आदि पर द्रव्य है, उनमें मृत्तिकारूप द्रव्यस्वरूपसे तो घट है, और सुवर्णरूप द्रव्यसे नही है। और अपने मृत्तिकारूप द्रव्यसे जैसे घटका सत्त्व है ऐसे ही पर सुवर्ण आदि द्रव्यरूपसे भी यदि उसका सत्त्व ही मानो तो घट मृत्तिकामय है, सुवर्णमय नहीं है, ऐसे जो नियम होता है वह नहीं होगा। और ऐसे नहीं माननेसे, अर्थात् पर द्रव्यसे उससे भिन्न द्रव्यका सत्त्व माननेसे प्रत्येक द्रव्यका जो नियम लोकमें है कि यह अमुक द्रव्य है, यह अमुक है इसका विरोध होगा क्योकि जब सभी द्रव्य स्वद्रव्यसे तथा परद्रव्यसे भी है तव भेद क्या है और भेद अभावसे प्रत्येक द्रव्यका नियम नहीं हो सकता।

ननु संयोगविभागादेरनेकद्रव्याश्रयत्वेपि न द्रव्यप्रतिनियमो विरुद्धयत इति चेन्न। तस्यानेकद्रव्यगुणत्वेनानेकद्रव्यस्यैव स्वद्रव्यत्वात, स्वानाश्रयद्रव्यान्तरस्यैव परद्रव्यत्वात्। स्वानाश्रयद्रव्यात्मनापि सयोगादेस्सत्त्वे स्वाश्रयद्रव्यप्रतिनियमव्याघातस्य तदवस्थत्वात्। तथा परद्रव्यात्मनेव स्वद्रव्यात्मनापि घटस्यासत्त्वे सकलद्रव्यानाश्रयत्वप्रसंगेन निराश्रयत्वापत्ति।

कदाचित् यह कहो कि सयोग विभाग आदि अनेक द्रव्यके आश्रय रहनेपर भी द्रव्योंके नियमका विरोध नही है. यह शका अयुक्त है। क्योकि सयोग विभाग आदि अनेक द्रव्यके गुण है इसलिये अनेक द्रव्य ही उनका स्वद्रव्य है, इसलिये अनेक द्रव्य उनका आधार होनेसे अनेक स्वद्रव्यरूपसे उनकी सत्ता युक्त है. और आधार वा आश्रय जो अन्य द्रव्य नहीं है वही पर द्रव्य है, यदि जो द्रव्य सयोग आदिका आश्रय नही है उस अपने अनाश्रय वा अनाधार द्रव्यरूपसे सयोग आदिकी सत्ता मानो तो अमुक द्रव्य सयोग आदिका आश्रय है अमुक द्रव्य नही है इस नियमका भङ्ग अवश्य होगा, क्योकि जब अपने आश्रय द्रव्य स्वरूपसे तथा अनाश्रय द्रव्य स्वरूपसे भी सयोग आदिका अस्तित्व है तब घट सयुक्त है पट सयुक्त नहीं है, यह नियम कैसे हो सकता है। और जैसे पर द्रव्य रूपसे घटकी असत्ता मानी जाती है ऐसे ही स्वद्रव्यसे असत्ता ही मानी जाय तो सम्पूर्ण वस्तु स्वद्रव्य और परद्रव्यके आश्रय न होनेसे घट निराधार हो जायगा, क्योंकि जब कोई उसका आधार न रहा तब वह कहा रहेगा।

एवं घटस्य स्वक्षेत्रं भूतलादि, परक्षेत्रं कुड्यादि। घट' स्वक्षेत्रेऽस्ति, परक्षेत्रे नास्ति। घटस्य स्वक्षेत्र इव परक्षेत्रेपि सत्त्वे प्रतिनियतक्षेत्रत्वानुपपत्ति। परक्षेत्र इव स्वक्षेत्रेऽप्यसत्त्वे च निराधारत्वापत्ति।

इसी प्रकार जिस स्थानमें घट हो वह भूतल वा काष्ठ आदि घटका स्वक्षेत्र[३] है, और अन्य भित्ति आदि जहां घट नही है वह उसका परक्षेत्र[४] है। उनमेंसे अपने क्षेत्रमें घट है और परक्षेत्रमें नहीं है घटकी जैसे स्वक्षेत्रमें सत्ता है ऐसे ही यदि परक्षेत्रमें भी मानीजाय

---

१ मृत्तिकासे बना हुआ २ सोनेसे बना हुआ. ३ अपने रहनेका नियत स्थान सब पदार्थकी सत्ता अपने द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावसे मानी गई है और अन्य द्रव्य क्षेत्रादिसे असत्ता ४ अपने रहनेके स्थानसे भिन्न स्थान

तो घट अमुक स्थानमें है अमुक स्थानमें नहीं है यह विभाग नहीं बनेगा, क्योंकि अपने तथा अन्यके क्षेत्रमें भी घटका सत्त्व है तब घटादि पदार्थ कहां है और कहां नहीं है यह विभाग कैसे हो सकता है और परक्षेत्रमें जैसे घटादिका असत्त्व माना है ऐसे ही अपने क्षेत्रमें भी असत्त्व मानो तो घट आदि निराधार ही हो जाएगे, क्योंकि अपने तथा अन्यके क्षेत्रमें जब असत्ता ही है तब उनकी सत्ताका आधार कौन हो सकता है ॥

तथा घटस्य स्वकालो वर्तमानकाल , परकालोऽतीतादि । तत्र स्वकालेस्ति, परकाले नास्ति। घटस्य स्वकाल इव परकालेपि सत्त्वे प्रतिनियतकालत्वाभावेन नित्यत्वमेव स्यात् । परकाल इव स्वकालेप्यसत्त्वे सकलकालासम्बन्धित्वप्रसंगेनावस्तुत्वापत्ति । कालसम्बन्धित्वमेव हि वस्तुत्वम् । एवञ्च घटो घटत्वेनास्ति, पटत्वेन नास्ति, मृद्द्रव्येणास्ति, सुवर्णद्रव्येण नास्ति, स्वक्षेत्रादस्ति, परक्षेत्रान्नास्ति, स्वकालादस्ति, परकालान्नास्तीति पर्यवसन्नम् ।

तथा घटका स्वकाल क्या है ? कि वर्तमान काल, अर्थात् जिस कालमें घटपर्याय वर्त्तता है वही उसका निज काल है, और भूत भविष्यत् उसके पर काल है क्योंकि वर्तमान काल-सहित भूत भविष्य कालमे यह घट नही है । इनमेसे अपने कालमे तो घट है और पर कालमें नही है । और जैसे निज कालमें घटकी सत्ता है ऐसे ही यदि पर कालमे भी मानी जाय तो अमुक कालमे घट है ओर अमुक कालमे नही है इस प्रकार नियत कालके अभावसे घट नित्य हो जायगा, क्योंकि निज तथा पर कालमें भी जब उसकी सत्ता मानी गई तो कहा नही है [1] । और पर कालमे जैसे असत्ता है ऐसे ही स्वकालमें भी यदि असत्ता ही मानो तो किसी कालमे घटकी सत्ताका सम्बन्ध न होनेसे शशशृङ्गवत् घट अवस्तु हो जायगा । क्योकि किसी न किसी कालके साथ वस्तुकी सत्ताका सबन्ध होने ही से उसका वस्तुत्व सिद्ध होता है । अब इस प्रकार पूर्व कथित रीतिमे घटत्व धर्मसे घट है पटत्व धर्मसे नहीं है, घट मृत्तिका रूप स्वद्रव्य स्वरूपसे है, पर सुवर्ण द्रव्यसे नहीं है, घट अपने क्षेत्रसे है पर क्षेत्रसे नही है, और घट अपने कालसे है, पर कालमे नही है, यह तात्पर्य सिद्ध हुआ ।

अत्राय बोधप्रकार'--घटत्वेनेति तृतीयार्थोऽवच्छिन्नत्व, धात्वर्थेन्वेति । असधात्वर्थोऽस्तित्व सत्त्वपर्यवसन्नम । आख्यातार्थ आश्रयत्वम् । तथा च घटत्वावच्छिन्नास्तित्वाश्रयो घट इति प्रथमवाक्याद्बोध । अभावानामधिकरणात्मकतया पटत्वावच्छिन्नाभावस्य घटस्वरूपत्वात्, तत्र नञ्समभिव्याहृतासधातोरभावोर्थ , आश्रयत्वमाख्यातार्थ', इति रीत्या तादृशाभावाश्रयो घट इति बोधेपि तादृशाभावात्मकत्वमेव घटस्य सिद्ध्यति, अभावानामधिकरणात्मकत्वात् । तृतीयवाक्ये मृद्द्रव्यपदोत्तरतृतीयाया अवच्छिन्नत्वमर्थ । एवमग्रेपि बोधा ऊह्या. ॥

अब यहा वाक्यार्थके बोधकी रीति यह है. "घट' घटत्वेन अस्ति" घट घटत्व स्वरूपसे है इस वाक्यमें जो 'घटत्वेन' यहा तृतीया विभक्तिका अर्थ अवच्छिन्नत्व [2] अर्थात् घटत्व

---

१ किस कालमे स्वकीय तथा परकीय कालमें भी घटकी सत्ता माननेसे सर्व कालमें घट सिद्ध होगया
२ अन्य पदार्थसे पृथक् करनेवाले अवच्छेदकरूप घटत्व धर्मसे सहिततव

इस अवच्छेदक धर्मका वैशिष्ट्य है और उस अवच्छिन्नत्वका अन्वय धातुके अर्थ सत्तामें होता है, अस, धातुका अर्थ जो अस्तित्व है उसका भी सत्ता रूप अर्थसे तात्पर्य्य है, 'अस्ति' में जो आख्यात 'ति' है उसका आश्रय अर्थ है। तो अब इस प्रकारसे–घटत्व धर्म्मसे अवच्छिन्न जो अस्तित्व अर्थात् सत्ता उस सत्ताका आश्रय घट, यह प्रथम वाक्यका वाक्यार्थ "घट घटत्वेन अस्ति" इन तीनों पदोंको मिलाके हुआ और सब अभाव जैन मतमें अधिकरणरूप मानेगये हैं इस प्रकारसे घट अभावका अधिकरण होनेसे पटत्व धर्म्मसे अवच्छिन्न जो अभाव अर्थात् पटका अभाव घटरूप है, क्योंकि यहां पटाऽभावका आधार घट माना है। उसी अपने अधिकरण भूत घटरूप वह होगा, और 'न अस्ति' यहापर नञ् अर्थात् निषेधरूप अर्थवाचक 'न' इस अव्यय पदकी समीपतासे अस् धातुका अभाव अर्थ है, अर्थात् 'न अस्' इन दोनोंको मिलाके अभावरूप अर्थ हुआ, और आख्यात 'ति' विभक्तिका आश्रय अर्थ है यह पूर्वमें कह आये है, तो इसी रीतिसे पटत्व धर्मसे अवच्छिन्न जो पट उस पटत्वावच्छिन्न अभावका आश्रय घट इस प्रकारका, "घट पटत्वेन नास्ति" इस द्वितीय वाक्यका अर्थ करनेपर पटत्वावच्छिन्न अभावरूपता ही घटकी सिद्ध होती है क्योंकि अभाव जब अपने आधार स्वरूप है। तब पटत्वरूप धर्म्मसे अवच्छिन्न पटके अभावका आधार घट है 'इसलिये पटत्व धर्म्मसे अवच्छिन्न अभाव स्वरूप घट है यह स्पष्ट रीतिसे अर्थ होगया और' "घट मृद्रव्येण अस्ति" (घट अपने मृत्तिकारूप द्रव्यसे है) इस तृतीय वाक्यमें भी मृद्रव्य इस पदके आगे जो तृतीया विभक्ति है उसका भी अवच्छिन्नत्व अर्थ है और अस् तथा तिका अर्थ पूर्ववत् सत्ता तथा आश्रय है अवच्छिन्नत्वका अन्वय आश्रयरूप तिके अर्थमें पूर्ववत् है मिलाके मृद्रव्यत्वसे अवच्छिन्न जो अस्तिता उसका आश्रय घट यह वाक्यार्थ हुआ इसी प्रकारसे आगेके चतुर्थ आदि वाक्योंका अर्थ भी समझलेना।

ननु–सर्वपदार्थानामपि स्वरूपादिचतुष्टयपररूपादिचतुष्टयाभ्यां व्यवस्थायामगीक्रियमाणायां स्वरूपादीनां स्वरूपाद्यन्तरस्याभावात्कथं व्यवस्था स्यात्? तेषामपि स्वरूपाद्यन्तरसद्भावेऽनवस्था प्रसगात्, सुदूरमपि गत्वा स्वरूपाद्यन्तराभावेपि कस्यचिद्व्यवस्थायां किं स्वररूपाद्यपेक्षया सत्त्वासत्त्वसमर्थनरूपया स्वगृहमान्यया प्रक्रियया? यथाप्रतीति वस्तुव्यवस्थोपपत्ते.॥ इतिचेन्–अनभिज्ञो भवान् वस्तुस्वरूपपरीक्षाया'। वस्तुस्वरूप प्रतीतिरेव स्वपररू-

---

१ सम्बन्ध २ धातुओंके आगे लगनेवाली विभक्ति ति तस् अन्ति आदि भी विभक्ति धातुओंके आगे जोडी जाती हैं उनको आख्यात कहते हैं ३ अपने आधाररूपता, अभावको आधाररूपता जैन मत तथा अन्य कई मतमें भी माना है उसकी उपपत्ति इस प्रकार है जैसे '**भूतले घटाभावः**' भूतलमें घटका अभाव है यहापर घटके अभावका अधिकरण भूतल है तो उस अभावका स्वरूप भूतल ही है क्योंकि भूतलके स्वरूपके सिवाय और कुछ वस्तु उपलब्ध नहीं होती, जिस वस्तुमें जिसका अभाव कहोगे वही वस्तु उस अभावका अधिकरण होगी, और उस अभावका स्वरूप वही अधिकरण होगा जैसे घटके स्वरूपके प्रदर्शनमें पट आदिका अभाव कहा जाता है तो अधिकरण होनेसे घट ही पट आदिके अभावरूप होगा. ४ नका अर्थ नहीं असका अर्थ होना दो मिलकर नहीं होना। और नहीं होना अभावरूप ही है

पाद्यवच्छिन्नसत्त्वासत्त्वादिकं विषयीकरोतीति निरूपयितुमुपक्रान्तत्वात्। अन्यथा नानानिरंकुशविप्रतिपत्तीनां निवारयितुमशक्तेः। वस्तुनो हि यथैवाबाधितप्रतीतिस्तथैव स्वरूपव्यवस्था, 'मानाधीना मेयसिद्धिः' इति वचनात्। एवञ्च—स्वरूपादीनां स्वरूपाद्यन्तरं प्रतीयते वा न वा? अन्त्ये स्वरूपाद्यन्तरं नांगीक्रियत एव। एवमपि तेषामस्तित्वनास्तित्वव्यवस्थाऽग्रे प्रपञ्चयिष्यते। आद्ये स्वरूपादीनामपि स्वरूपाद्यन्तरमंगीक्रियते, प्रतीत्यनुरोधात्। न चैवमनवस्था, यत्र स्वरूपाद्यन्तरस्य प्रतीतिस्तत्र व्यवस्थोपपत्ते। तत्र जीवस्य तावदुपयोगसामान्यं स्वरूपं, तस्य तल्लक्षणत्वात्। उपयोगो लक्षणमिति वचनात्। ततोऽन्योऽनुपयोग पररूपम्। ताभ्या सदसत्त्वे प्रतीयेते। उपयोगसामान्यस्य च ज्ञानदर्शनान्यतरत्वं स्वरूपम्, इतरत्पररूपम्। उपयोगविशेषस्य ज्ञानस्य स्वार्थाकारनिश्चयात्मकत्वं स्वरूपम्, दर्शनस्य किंस्विदित्यादिरूपेणाकारग्रहणम् स्वरूपम्। ज्ञानस्यापि परोक्षस्यावैशद्यं स्वरूपम्। प्रत्यक्षस्य वैशद्यं स्वरूपम्। दर्शनस्यापि चक्षुरचक्षुर्निमित्तस्य चक्षुरादिजन्यार्थग्रहणं स्वरूपम्। अवधिदर्शनस्यावधिविषयीभूतार्थग्रहणं स्वरूपम्। परोक्षस्यापि मतिज्ञानस्येन्द्रियानिन्द्रियजन्यत्वे सति स्वार्थाकारव्यवसायात्मकत्वं स्वरूपम्। अनिन्द्रियमात्रजन्यत्वं श्रुतस्य स्वरूपम्। प्रत्यक्षस्यापि विकलस्यावधिमन पर्यायलक्षणस्येन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षत्वे सति स्पष्टतया स्वार्थव्यवसायात्मकत्वं स्वरूपम्। सकलप्रत्यक्षस्य केवलज्ञानलक्षणस्य सकलद्रव्यपर्यायसाक्षात्करणं स्वरूपम्। ततोन्यत्सत्त्वं तु पररूपम्। ताभ्या सदसत्त्वे प्रतिपत्तव्ये। एवमुत्तरोत्तरविशेषाणामपि स्वरूपपररूपे बुद्धिमद्भिरूह्ये। तद्विशेषप्रतिविशेषाणामनन्तत्वात्।

शङ्का—सम्पूर्ण पदार्थोंकी व्यवस्था स्वरूप अर्थात् निजरूप द्रव्य क्षेत्र काल, तथा परके रूप, द्रव्य, क्षेत्र तथा काल इन चारोंके समुदायसे स्वीकार करनेपर रूप द्रव्य क्षेत्र तथा काल ये भी पदार्थ है इनका भी स्वरूप द्रव्यादि होना चाहिये, सो तो मानना नही, तब स्वरूप चतुष्टयके अन्य स्वरूप आदि चतुष्टयके अभावसे कैसे इनकी व्यवस्था होसकती है और यदि स्वरूप, द्रव्य क्षेत्र तथा काल इन चारोंके भी अन्य स्वरूप द्रव्य क्षेत्र कालकी सत्ता मानोगे तो उनके भी अन्य स्वरूप द्रव्य आदि तथा पररूप द्रव्यादि चारों मानने पडेंगे, तथा उनके भी अन्य स्वरूप द्रव्य आदि चारों होगे, इस प्रकार अनवस्था दोष होगा, कहीं विश्राम न मिलेगा क्योंकि जो २ स्वरूप द्रव्य आदि मानोंगे उन सभोंको अपने स्वरूपका बोध करानेके लिये दूसरे स्वरूप पररूप द्रव्य आदिकी आवश्यकता पड़ती बराबर लगातार चली जायगी कही भी व्यवस्था नही हो सकती, इसलिये अतिदूरजाके भी किसी पदार्थकी व्यवस्था करनेमें उसके जब स्वरूप द्रव्य आदि चतुष्टयके दूसरे स्वरूप आदि चतुष्टयके न होनेपर भी वस्तुकी व्यवस्था तो अवश्य करनी है, तो पदार्थोंके सत्व असत्वको प्रमाणित करनेवाली तथा अपने ही घर अर्थात् जैन मतमें माननीय, इस स्वरूप तथा पररूप आदि चतुष्टयकी अपेक्षा रखनेवाली प्रक्रियासे क्या प्रयोजन है? क्योंकि वस्तुका स्वरूप जैसे भासता है वैसी ही व्यवस्था करनी योग्य है। यदि ऐसा कहो तो—आप वस्तुके स्वरूपकी परीक्षासे अज्ञात हो। क्योंकि वस्तुके

स्वरूपका भान होना ही स्वकीय[1] रूप द्रव्य आदि चतुष्टय, तथा परकीय[2] रूप द्रव्य आदि चतुष्टय सहित सत्व तथा असत्व आदिको विषय[3] करता है। इस बातके ही निरूपण करनेको हमारे प्रयत्नका आरम्भ है। और यदि प्रमाणोंसे वस्तुके स्वरूपका भासना सिद्ध न कियाजाय तो प्रमाणरूप अकुशके बिना वादियोकी अनेक प्रकारकी जो विप्रतिपत्ति[4] अर्थात् विरुद्ध युक्ति है उनका निवारण करनेमें सर्वथा असमर्थ है क्योकी वस्तुके[5] स्वरूपकी व्यवस्था उसी प्रकारसे करनी चाहिये कि जिसमें उसका भान बिना किसी प्रमाणके बाधसे[6] निर्विवाद हो प्रमाणके आधीन प्रमेय पदार्थोंकी सिद्धि होती है ऐसा अन्य ग्रन्थमें आचार्यका वचन है। सो इस रीतिसे अब विचारना है कि स्व तथा पररूप द्रव्य आदि चतुष्टयके अन्य स्वरूप द्रव्यादि चतुष्टयकी प्रतीति[7] होती है वा नही ? यदि अन्त्यपक्ष है अर्थात् नहीं हो, तो स्वरूप आदिके अन्य स्वरूप आदिका तो स्वीकार ही नहीं है प्रतीति कैसे होती है। ऐसा माननेपर भी उनके अस्तित्व तथा नास्तित्व आदिकी व्यवस्थाका वर्णन आगे चलके करेंगे। और यदि प्रथम पक्ष है। अर्थात् स्वरूप आदि चतुष्टयके भी अन्य स्वरूप आदिका भान होता है तो बोधके[8] अनुसार स्वरूप आदि चतुष्टयके भी अन्य स्वरूप आदि चतुष्टयका अङ्गीकार करते है। अब कदाचित् कहो कि स्वरूप आदि चतुष्टयके अन्य स्वरूप आदि चतुष्टय जैसे स्वीकार किया है ऐसे ही इस अन्य स्वरूप आदिके भी और अन्य स्वरूप आदि चतुष्टय होंगे। तथा उनके भी अन्य स्वरूप आदि चतुष्टय होगे, तो इस प्रकार अनवस्था दोष आवेगा ? जहापर अन्य स्वरूप आदि चतुष्टयका भान होता है वहा ही पर व्यवस्थाकी उपपत्ति भी हो जायगी। अब जीवके स्वरूपके विषयमें स्वरूप द्रव्यादिका विचार करते है—उसमे प्रथम "उपयोगसामान्य" यह जीवका स्वरूप है, क्योकि उपयोगसामान्यरूप ही जीवका लक्षण है **"उपयोगो लक्षणम्"** उपयोग ही जीवका लक्षण है। ऐसा महाशास्त्रका वचन है। और उस उपयोगसे अन्य जो अनुपयोग है वही जीवका पररूप है। इन दोनोमेसे उपयोगसे तो जीवका सत्व, और अनुपयोगसे असत्वका भान होता है, और उपयोग सामान्यका स्वरूप, ज्ञान दर्शन इन दोनोंमेसे अन्यतर अर्थात् ज्ञान दर्शनमेसे कोई भी एक है, और ज्ञान दर्शनसे भिन्न उपयोगका पररूप है। और इनमेसे भी उपयोग विशेष जो ज्ञान है उस ज्ञानका स्वरूप अपनेसे प्रकाशनीय[9] जो पदार्थ, उस पदार्थका निश्चय है। और इन्द्रिय तथा

---

१ अपना रूप, द्रव्य, क्षेत्र, काल २ अन्यके रूप द्रव्य क्षेत्र काल ३ ज्ञानमे प्रकट करना, वस्तुके स्वरूपका भास नहीं हमको यह बोध कराता है कि वस्तु अपने रूप द्रव्यादि चारोंकी अपेक्षासे है, अन्यके रूप द्रव्यादि चारोंकी अपेक्षासे नही है ४ सत्व वा असत्व आदि एकान्तरूपसे वादियोके अनेक प्रकारके विरुद्ध कथन ५ वस्तुके स्वरूपका ६ प्रमाणका विरोध वस्तुके स्वरूपका निणय ऐसे करना चाहिये जो किसी प्रमाणसे कट न सके, जैसे किसीने कहा कि पदार्थ होनेसे अग्नि शीतल है, परन्तु जब हाथ रखके देखोगे तो वह उष्ण भासेगा इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाणके होनेसे यह निर्णय ठीक नहीं है ७ वस्तुके स्वरूपका ज्ञान अर्थात् जहापर वस्तुके स्वरूप आदिके अन्य स्वरूप आदि चतुष्टयका ज्ञान होना है वहापर वह माना गया है ८ स्वरूप आदि चतुष्टयके ज्ञानकी तरह ९ जो वस्तु ज्ञानके द्वारा प्रकाश होती है

पदार्थके सन्निधान होते ही विशेष्यविशेषणभावसे शून्य कुछ है इत्यादिरूपसे आकारका ग्रहण करना दर्शनका स्वरूप है, तथा पदार्थोका अवैशद्य रूपसे, अर्थात् स्वच्छता तथा निर्मलतापूर्वक स्पष्टरीति न भासना परोक्षज्ञानका स्वरूप है, तथा वैशद्य अर्थात् निर्मलता वा स्वच्छता पूर्वक स्पष्टरीतिसे भासना प्रत्यक्ष ज्ञानका स्वरूप है और चारों प्रकारके दर्शनोंमेंसे चक्षु तथा अचक्षुको निमित्त मानके जो दर्शन होता है, उसका नेत्र आदियोंसे उत्पन्न पदार्थकी सत्तामात्रका ग्रहण ही स्वरूप है, इसी प्रकार अवधिदर्शनका अवधिदर्शनके विषय भूत पदार्थकी सत्ताका ग्रहण करना स्वरूप है और परोक्ष ज्ञानमें भी मतिज्ञानरूप परोक्षज्ञानका इन्द्रिय तथा मनसे जन्य, अर्थात् उत्पन्न होकर अपनेसे प्रकाशनीय पदार्थका निश्चय होजाना ही स्वरूप है। तथा अनिन्द्रिय जो मन है, उस मनमात्रसे उत्पन्न होना परोक्ष ज्ञानका स्वरूप है। और इन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय मनकी कुछ भी अपेक्षा न रखकर, केवल आत्मामात्रकी अपेक्षासे निर्मलता पूर्व स्पष्टरीति अपने विषयभूत पदार्थोका निश्चय करना यह विकल प्रत्यक्षरूप अवधि तथा मन पर्य्ययज्ञानका स्वरूप है, और सम्पूर्ण द्रव्य, तथा सम्पूर्ण पर्य्यायोंको साक्षात्कार करना, यह सकल प्रत्यक्षरूप केवल ज्ञानका स्वरूप है। इस अपने २ स्वरूपसे भिन्न २ सत्त्व सबका पररूप है। इन्ही अपने स्वरूप तथा पररूपसे सत्त्व तथा असत्त्व जानेजाते है। इस प्रकार यहातक तो स्वरूप पररूप आदिके अन्यस्वरूप पररूपादि हमने कहे, इस प्रकार उत्तरोत्तर ज्ञानोंके जो विशेष है उनके भी स्वरूप पररूपादिकी कल्पना बुद्धिमानोंको स्वय करलेनी चाहिये। क्योकि ज्ञानोंके भेद अवान्तर भेद पुन उनके प्रभेद अनन्त है सबका निरूपण असभव है.

ननु–प्रमेयस्य किं स्वरूपं किंवा पररूपम्? याभ्यां प्रमेयं स्यादस्तिस्यान्नास्तीति व्यपदिश्येतेति चेत्? उच्यते। प्रमेयस्य प्रमेयत्वं स्वरूपं, घटत्वादिकं पररूपम्। प्रमेयं प्रमेयत्वेनास्ति, घटत्वादिना नास्ति॥

शङ्का–प्रमेयका क्या तो स्वरूप है और क्या पररूप है? जिन स्वरूप तथा पररूपसे **'प्रमेयः स्यादस्ति तथा स्यान्नास्ति'** कथंचित् प्रमेय है और कथंचित् नहीं है, ऐसा

१ अस्पष्ट जो स्वच्छ वा साफ २ न भासे अवैशद्य अर्थात् साफ न भासना यह परोक्ष प्रमाणका जैन मतमे लक्षण है २ विशद अर्थात् स्पष्ट साफ प्रतिभास होना यह प्रत्यक्षका लक्षण है ३ चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ये चार प्रकारके दर्शन हैं ४ नेत्रसे भिन्न कर्णआदि इन्द्रियोंको मानकर ५ मति तथा श्रुत इन दोनों ज्ञानोंको परोक्ष प्रमाण माना है ६ नेत्र आदि इन्द्रिय तथा मन जिसको जिन मतमे अनिन्द्रिय भी कहते हैं इन दोनोंके निमित्तसे मतिज्ञान होता है ७ अवधिज्ञान तथा मन पर्यज्ञानको विकल प्रत्यक्ष और केवलज्ञानको सकलप्रत्यक्ष कहते हें क्योंकि वह सम्पूर्ण द्रव्य तथा पर्याओंको साक्षात् करता है ८ अनेक भेद मतिश्रुत अवधि मन पर्य्यय तथा केवल ये पाच ज्ञान जो प्रमाणरूप है इनमें प्रथम मतिज्ञानके ही अवग्रह ईहा अवाय धारणा ये चार भेद हैं, पुनः इन अवग्रहादिक एकके बहु बहुविधि अल्प एकविध तथा क्षिप्रादि वारह २ भेद हैं ऐसे ही श्रुतज्ञानके २४८ भेद होते हैं इनमे भी उत्तर पुरुषादिकी अपेक्षा लीजाय तो पार नहीं मिलेगा इस हेतुसे अनन्त विशेष भेद हैं

उसके विषयमें कहा जाय? इस प्रश्नका उत्तर कहते है.–प्रमेयका[1] प्रमेयत्व जो अवच्छेदक धर्म्म है वही उसका स्वरूप है और घटत्व आदि पररूप है। इस हेतुसे प्रमेय प्रमेयत्व स्वरूपसे है और घटत्व रूपसे नही है।

अन्ये तु–"प्रमेयस्य स्वरूप प्रमेयत्वम्, अप्रमेयत्वं पररूपम्। न च–अप्रमेयत्वं प्रमेयत्वाभावस्स चाप्रसिद्ध इति वाच्यम्, प्रमेयत्वाभावस्य शशविषाणादौ प्रसिद्धत्वात्। न च–शशविषाणादीना प्रमेयत्वाभावस्य च व्यवहारविषयत्वेन प्रमेयत्वापत्तिरिति वाच्यम, तत्साधकप्रमाणाभावेन प्रमेयत्वासिद्धे । प्रमेयत्व हि प्रमाणजन्यप्रमितिविषयत्वम्, तच्च प्रमाणाभावे नोपपद्यते। एवञ्च निरुक्तस्वरूपपररूपाभ्यां प्रमेयस्यास्तित्वनास्तित्वोपपत्ति।" इत्याहु ॥

और अन्यवादी तो–प्रमेयत्वको प्रमेयका स्वरूप और अप्रमेयत्वको पररूप कहते है। अव कदाचित् ऐसी शङ्का करो कि अप्रमेयत्व तो प्रमेयत्वका अभाव स्वरूप है और प्रमेयत्वका अभाव तो अप्रसिद्ध है, क्योंकि प्रमेयका अर्थ है कि प्रत्यक्ष प्रमाणआदिसे जाना जाय सो ऐसा कौन पदार्थ है जो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे नही जानाजाता। इस कारणसे प्रमेयत्वका अभाव अप्रसिद्ध है, सो ऐसी शका नही कर सकते क्योंकि प्रमेयत्वका अभाव भी शश वा अश्व शृग आदिमें प्रसिद्ध है। कदाचित् यह कहो कि शशशृगआदिकमें भी प्रमेयत्वके अभाव रूपसे लोकमें व्यवहार है इसलिये शशशृग आदिमें जो प्रमेयत्वका अभाव है उसको भी प्रमेयत्व होजायगा क्योंकि शशशृग आदिमें प्रमेयत्वके अभावरूपसे प्रमेयत्वका अभाव जानाजाता है। यह कथन नहीं कर सकते क्योंकि प्रमेयत्वाभावके जाननेमे साधक कोई प्रमाण नहीं है इस कारण प्रमेयत्वके अभावमें प्रमेयत्वकी सिद्धि नही हो सकती इसका हेतु यह है कि प्रमाणसे उत्पन्न जो प्रमितिरूप फल उस प्रमितिका जो विषय है उसको प्रमेयत्व कहते है अत. प्रमेयत्वके अभावको प्रमाणजन्य[2] प्रमितिका विषय होना बिना किसी प्रमाणके युक्तिसे नही सिद्ध हो सकता इस प्रकार पूर्वकथित रीतिसे स्वरूप प्रमेयत्वसे और अप्रमेयत्व पररूपसे प्रमेयका अस्तित्व तथा नास्तित्व युक्तिपूर्वक सिद्ध है ॥ ऐसा अन्यवादी कहते है।

ननु–जीवादिद्रव्याणा षण्णां किं स्वद्रव्य किं वा परद्रव्यम्? याभ्यामस्तित्वनास्तित्वे व्यवतिष्ठेते, द्रव्यान्तरस्यासम्भवात, इति चेदुच्यते। तेषामपि शुद्ध सद्द्रव्यमपेक्ष्यास्तित्वम् तत्प्रतिपक्षं सदभावमशुद्धद्रव्यमपेक्ष्य नास्तित्वञ्चोपपद्यते ॥

शङ्का–जीव अजीव षट्[3] द्रव्योंका क्या तो स्वद्रव्य है और क्या पर द्रव्य है जिससे

---

१ जो प्रमाणसे जाना जाय उसका अवच्छेदक पृथक् करनेवाला प्रमेयत्व धर्म ही स्वरूप है २ प्रमाण (ज्ञान) रूप करणसे उत्पन्न प्रमितिरूप फलका विषय अर्थात् घट आदिके सदृश जो ज्ञानके फलका विषय है वही प्रमेय है ३ जीव अजीव आवध बध सवर तथा निर्जरा ये षट् (छ) ही द्रव्य जिन मतमे है इनसे भिन्न द्रव्य न होनेसे इनके स्वद्रव्य तथा परद्रव्यकी व्यवस्था नही बन सकती इस आशयसे प्रश्न है

कि षट् द्रव्योंके स्वद्रव्यसे अस्तित्व और परद्रव्यसे नास्तित्व उनमें व्यवस्थित हो क्योंकि छ द्रव्योंसे भिन्न तो कोई द्रव्य ही नहीं है तब इनके स्वद्रव्य तथा परद्रव्यसे अस्तित्वआदि धर्म षट् द्रव्योंमें कैसे रह सकते है [१] ॥ यदि ऐसा प्रश्न करो तो इसका उत्तर कहते है— इन षट् द्रव्योंका भी शुद्ध सत् द्रव्यकी अपेक्षासे तो अस्तित्व, और उससे विरुद्ध अशुद्ध असत् द्रव्यकी अपेक्षासे नास्तित्व भी सिद्ध होता है, अर्थात् षट् (छ) द्रव्योंका शुद्ध सत् द्रव्य तो स्वरूप है उसकी अपेक्षासे और अशुद्ध असत् द्रव्य इनका परद्रव्य है, उसकी अपेक्षासे छ द्रव्योंका नास्तित्व भी युक्तिपूर्वक सिद्ध है ।

ननु -महासत्त्वरूपस्य शुद्धद्रव्यस्य स्वपरद्रव्यादिव्यवस्था कथ ? तस्य सकलद्रव्यक्षेत्र-कालभावात्मकत्वात्, तद्व्यतिरेकेणान्यद्रव्याद्यभावात्, इति चेन्न,-शुद्धद्रव्यस्यापि सकल-द्रव्यक्षेत्रकालाद्यपेक्षया सत्त्वस्य, विकलद्रव्याद्यपेक्षयाऽसत्त्वस्य च, व्यवस्थिते । 'सत्ता स-प्रतिपक्षैका' इति वचनात् ।

प्रश्न —महासत्त्वरूप जो शुद्ध द्रव्य है उसकी स्वकीय तथा परकीय द्रव्यकी व्यवस्था कैसे होसकती है [२] क्योकि महासत्त्वरूप शुद्ध द्रव्य तो संपूर्ण द्रव्य क्षेत्र काल तथा भाव स्वरूप ही है, उससे भिन्न जब दूसरा द्रव्य नही है तब महासत्त्वरूप शुद्ध द्रव्यका क्या स्वद्रव्य होसकता है और क्या परद्रव्य होसकता है और स्व पर द्रव्यके बिना महासत्त्वरूप शुद्ध द्रव्यकी सत्त्व असत्त्वकी व्यवस्था कैसे होसकती है [८] । ऐसी शका कभी नही कर सकते । क्योकि महासत्त्वरूप शुद्धद्रव्यके भी सकल [३] द्रव्य क्षेत्र तथा कालादिकी अपेक्षासे सत्त्वकी और विकल द्रव्य क्षेत्र कालादिकी अपेक्षासे असत्त्वकी व्यवस्था पूर्ण रीतिसे है अर्थात् महासत्त्व शुद्ध द्रव्यका सकल द्रव्य क्षेत्र काल तथा भाव तो स्वकीय द्रव्य है उनकी अपेक्षासे सत्त्व और विकल [४] द्रव्य क्षेत्र काल भाव पररूप है उनकी अपेक्षासे असत्त्व भी युक्तिसे सिद्ध है ॥ सपूर्ण द्रव्य क्षेत्र कालादिरूप जो एक महासत्ता है वही विकल द्रव्य क्षेत्र आदिसे प्रतिपक्ष सहित है ॥ ऐसा अन्यत्र आचार्यका बचन है ।

एतेन सकलक्षेत्रकालव्यापिनो गगनस्य सकलकालक्षेत्रापेक्षया सत्त्व यत्किञ्चित्क्षेत्रका-लापेक्षयाऽसत्त्व च निरूपित प्रतिपत्तव्यम ।

इस महासत्त्वरूप शुद्ध द्रव्यके स्वकीय तथा परकीय द्रव्य क्षेत्र आदिके निरूपणसे ही संपूर्ण क्षेत्र काल व्यापी आकाशका भी सम्पूर्ण काल क्षेत्रकी अपेक्षासे तो सत्त्व और यत्-किंचित् क्षेत्र कालकी अपेक्षासे असत्त्व भी पूर्ण रीतिसे प्रतिपादित होगया यह समझलेना ।

१ स्थित, अपना और द्रव्य नहा हे तब इनमे सत्त्व असत्त्व कैसे २ सम्पूर्ण द्रव्य क्षेत्रादिकी सत्ता महासत्त्व है ३ सम्पूर्ण ४ न्यून वा अपूर्ण ५ किंचित् अल्प, तात्पर्य यह है कि आकाश सम्पूर्ण द्रव्य देश कालव्यापी है ऐसा कोई देश काल नही है जहा आकाश न हो इस लिये सम्पूर्ण द्रव्य क्षेत्र (देश) कालकी अपेक्षासे तो आकाशका सत्त्व और अल्प द्रव्य क्षेत्र काल आदिकी अपेक्षासे असत्त्व है क्योकि वह अल्प द्रव्य क्षेत्र कालादिमे नहीं है किन्तु सबमे है

ननु–अस्तित्वमेव वस्तुनस्स्वरूपं, न पुनर्नास्तित्व, तस्य पररूपाश्रयत्वात् । यदि च पररूपाश्रितमपि नास्तित्वं वस्तुन' स्वरूपं, तदा पटगतरूपादिकमपि घटस्य स्वरूप स्यात्; इति चेन्न; उभयस्यापि स्वरूपत्वे प्रमाणसद्भावात् । तथाहि–घटस्य स्वरूपाद्यवच्छिन्नास्तित्वं पररूपाद्यवच्छिन्ननास्तित्वं च प्रत्यक्षेणैव गृह्यते । घटो घटत्वेनास्तीत्यबाधितप्रतीते । अनुमानप्रयोगश्च–अस्तित्वं स्वभावेनाविनाभूतं–विशेषणत्वात्, साधर्म्यवत् । यथा साधर्म्यं वैधर्म्येणाविनाभूतं–तथास्तित्वं स्वभावेन नास्तित्वेनाविनाभूतम् । अविनाभूतत्वं च नियमेनैकाधिकरणवृत्तित्वम् ॥

प्रश्नः–अस्तित्व ही अर्थात् सत्ता ही वस्तुका स्वरूप है न कि नास्तित्व वा असत्ता, क्योंकि अस्तित्व वा सत्त्व तो घट आदि वस्तुके आश्रय है और नास्तित्व वा असत्ता पररूप आदिके आश्रयसे रहती है । और यदि पररूपके आश्रित होके भी नास्तित्व घट वस्तुका स्वरूप हो, तो पटमें जो रूप आदि है वे भी घटके स्वरूप हो जांयगे? ऐसी शका नहीं कर सकते, क्योंकि प्रमाण होनेसे अस्तित्व तथा नास्तित्व दोनो वस्तुके स्वरूप है, जैसे घटके स्वरूप द्रव्यत्व आदिसे अवच्छिन्न तो अस्तित्व और पररूप द्रव्यत्व आदिसे अवच्छिन्न नास्तित्व दोनों स्वरूप प्रत्यक्षसे अनुभूत होते है । घट अपने घटत्वरूप धर्मसे है और पररूप पटत्व धर्मसे नहीं है, यह प्रतीति अर्थात् अनुभव बिना किसी प्रमाणकी बाधाके होता है । इस अनुभवको दृढ करनेके लिये अनुमानका भी प्रयोग है,–जैसे अस्तित्व घटके स्वभावसे अविनाभूत[1] है क्योंकि वह विशेषणीभूत धर्म है जैसे साधर्म्य । तात्पर्य यह है कि जैसे धूम अग्निके बिना नही रहसकता अत' जहा धूम है वहा अग्नि अवश्य है इसलिये धूम अग्निका अविनाभूत है, ऐसे ही अस्तित्व भी अपने स्वभाव घटादिका अविनाभूत अर्थात् अपने स्वभावसे साधर्म्य वैधर्म्यके तुल्य व्याप्त है । जैसे जब किसी अपेक्षासे किसी पदार्थके साथ किसी पदार्थका साधर्म्य है तो वह धर्म भी किसीकी अपेक्षासे उसीमें विद्यमान है जैसे घटमें मृत्तिका द्रव्यसे साधर्म्य है तो उसी घटमें सुवर्ण द्रव्यसे वैधर्म्य भी है, ऐसे ही अस्तित्व भी अपने स्वभाव नास्तित्वसे व्याप्त अर्थात् अविनाभूत है, तात्पर्य यह है कि जब घटमें स्वरूप द्रव्यादिकी अपेक्षासे अस्तित्व है तब उसी घटमें अन्य पर द्रव्यादिककी अपेक्षासे नास्तित्व भी है, क्योंकि अस्तित्व नास्तित्व इन दोनोंमें अविनाभूत व्याप्ति है और अविनाभूत जो है वे धूम और अग्निके समान एक अधिकरणमें नियमसे रहते है इस हेतुसे साधर्म्य वैधर्म्यके समान जहां अस्तित्व स्वरूप द्रव्यादिकी अपेक्षासे है वहा पररूप द्रव्यादिकी अपेक्षासे नास्तित्व भी है, इस प्रकार अस्तित्व तथा नास्तित्व दोनों वस्तुका स्वरूप सिद्ध होगया ॥

---

१ व्यापककी सत्ताके बिना जो न रहसके उसको न्यायशास्त्रमे अविनाभूत कहते है जैसे अग्निके बिना धूम नही रह सकता इस हेतुसे धूम अग्निका अविनाभूत है अर्थात् धूम अग्निका आपसमे व्याप्य व्यापक भाव है इससे यह सिद्ध हुआ कि धूमके रहते अग्नि अवश्य है ऐसे ही अस्तित्व तथा नास्तित्वका भी है

ननु--घटोऽभिधेय' प्रमेयत्वादित्यादिहेतौ वैधर्म्यविरहेपि साधर्म्यं दृश्यत इति साधर्म्यस्य वैधर्म्याविनाभूतत्वाभावान्न दृष्टान्तसंगति', इति चेदुच्यते । साधर्म्यन्नाम साध्याधिकरणवृत्तित्त्वेन निश्चितत्वम् । वैधर्म्यं च साध्याभावाधिकरणावृत्तित्वेन निश्चितत्वम् । एवं चाभिधेयत्वाभावाधिकरणे शशशृंगादाववृत्तित्वेन निश्चितत्वं प्रमेयत्वस्य वर्तत इति तादृशहेतोर्वैधर्म्यमक्षतमिति ।

प्रश्न.--"घटः अभिधेयः प्रमेयत्वात्" घट अभिधेय अर्थात् कथनके योग्य है । क्योंकि उसमें प्रमेयत्व धर्म है, इत्यादि अनुमानमें जहां प्रमेयत्व आदि हेतु है, वहां वैधर्म्यके अभावमें साधर्म्य है तो साधर्म्य वैधर्म्यका साहचर्य्य न रहा तब साधर्म्य वैधर्म्यके सदृश अस्तित्व नास्तित्वसे व्याप्त है यह दृष्टांत अयोग्य है । कारण यह है कि प्रमेय सब पदार्थ है तो जहां प्रमेयत्व है वहां प्रमेयत्वका अभाव न होनेसे वैधर्म्यके बिना भी साधर्म्य है [१] । यदि ऐसी शका करो तो इसका उत्तर देते हैं,--साध्यके अधिकरण आधारोंमें जिसकी वृत्तिता निश्चित हो उसको साधर्म्य कहते है, और साध्यके अभावके अधिकरणमें जिसका अवृत्तित्व अर्थात् न रहना निश्चित हो उसको वैधर्म्य कहते है इसलिये पूर्व कथित अनुमानमें साध्य अभिधेयत्व है उसके अभावके अधिकरण शशश‍ृङ्ग आदिमें अवृत्तिता प्रमेयत्वकी निश्चित है क्योंकि शशश‍ृङ्ग आदि कुछ न होनेसे न उसमें अभिधेयत्व साध्य है और न प्रमेयत्व हेतु ही है इसलिये साध्याभावके अधिकरणमें अवृत्तित्वरूपसे निश्चितत्व धर्म्म प्रमेयत्वमें है इसलिये पूर्णरूपसे इस हेतुमें वैधर्म्य भी है ।

एवं नास्तित्व स्वाभावेनास्तित्वेनाविनाभूतम्, विशेषणत्वात् । वैधर्म्यवत्, इत्यनुमानेनापि तयोरविनाभावसिद्धिः ।

और जैसे अस्तित्व नास्तित्वस्वभावसे व्याप्त है यह अनुमान पूर्व सिद्ध करचुके है ऐसे यह भी अनुमान है । कि नास्तित्व अस्तित्वस्वभावसे अविनाभूत अर्थात् व्याप्त है क्योंकि वह विशेषण है जैसे वैधर्म्य इस अनुमानसे नास्तित्व अस्तित्वका अविनाभाव सिद्ध है ।

ननु--पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते, गन्धवत्त्वादित्यादिकेवलव्यतिरेकिहेतौ वैधर्म्यं साधर्म्येण विनापि वर्तत इति निरुक्तानुमाने दृष्टान्तासगतिरितिचेन्न । केवलव्यतिरेकिहेतावपि साधर्म्यस्य घटादावेव सम्भवात । इतरभेदाधिकरणे घटे गन्धवत्त्वरूपहेतोर्निश्चितत्वेन साधर्म्यस्याक्षतत्वात् । पक्षभिन्न एव साधर्म्यं न पक्ष इति नियमाभावात् ।

१ जो प्रमाणसे जानाजाय तो प्रमाणसे सब कुछ जाना जाता है इस लिये प्रमेयत्व हेतु बिना वैधर्म्यके साधर्म्य रूपसे ही है २ साथ रहनेका नियम (व्याप्ति) अर्थात् व्याप्यके रहनेसे व्यापक अवश्य रहे जैसे धूमके रहनेपर अग्नि आम्रत्वके रहनेपर वृक्षत्व ३ अविनाभूत जैसे व्याप्ति वा अविनाभावके नियमसे जहा धूम है वहा अग्नि अवश्य है ऐसे ही जहा अस्तित्व है वहां किसी न किसी अपेक्षासे नास्तित्व भी है. ४ रहना वा सत्ता ५ न रहना अथवा असत्ता साध्य अभिधेयके अभावके अधिकरण शशश‍ृंग आदिमें प्रमेयत्वकी अवृत्तिता (न होना वा रहना) निश्चित है ६ व्याप्तिरूप सबध व्यापककी सत्ता बिना व्याप्यकी सत्ताका न होना इसीका नाम अविनाभाव है तो इस अनुमानसे नास्तित्व अस्तित्वके बिना नहीं रहता और अस्तित्व भी नास्तित्वके बिना नहीं रहता है । इसलिये दोनोका परस्पर अविनाभाव अर्थात् व्याप्ति है

प्रश्नः—**'पृथिवी इतरेभ्यः भिद्यते गन्धवत्त्वात्'** पृथिवी जल आदिसे भिन्न है क्योंकि उसमें गन्धवत्त्व है इत्यादि केवलव्यतिरेकी हेतुवाले अनुमानमें गन्धवत्त्वरूप केवलव्यतिरेकी हेतु अर्थात् जब अपनेसे साध्य पदार्थमे ही रहनेवाले हेतुमें वैधर्म्य साधर्म्यके विना-ही है। इस हेतुसे नास्तित्व अस्तित्वस्वभावसे विशेषता होनेसे व्याप्त है वैधर्म्यके तुल्य यह जो दृष्टान्त दिया है सो असगत है? । ऐसी शका नही कर सकते । क्योंकि पृथिवी-मात्रमें रहनेवाले गन्धवत्त्वरूप केवलव्यतिरेकी हेतुमें भी साधर्म्यका सभव घटआदिरूप पृथिवीमें ही है । साध्यके अधिकरणमें वृत्तित्वरूपमे निश्चितत्व यह हम साधर्म्यका स्वरूप पूर्व कह आये है सो यहा पृथिवीसे इतर जलादिका भेद साध्य है इसलिये पृथिवीसे अन्यप्रतियोगिक भेदके अधिकरणरूप घटमें गन्धवत्त्वरूप हेतुका होना निश्चित है । इस कारण गन्धवत्त्वरूप हेतुमें साध्यके अधिकरणमे वृत्तित्वसे निश्चितत्वरूप साधर्म्य पूर्ण रूपसे है । और पक्षसे भिन्नमें ही साधर्म्य चाहिये न कि पक्षमे ऐसा नियम तो नही है । इसलिये पृथिवीसे अभिन्न घटरूप पक्षमे भी साधर्म्य जानेमे कोई हानि नही है ।

अथ–शशविषाणादौ नास्तित्वमस्तित्वेन विनापि दृश्यते, इति चेन्? अत्र वदाम । गो-मस्तकसमवायित्वेन यदस्तीति प्रसिद्ध विषाण, तच्छशादिमस्तकसमवायित्वेन नास्तीति निश्ची-यते । मेषादिसमवायित्वेन यानि रोमाणि सन्तीति प्रसिद्धानि तान्येव कूर्मादिसमवायित्वेन न सन्तीति निश्चीयन्ते। वनस्पतिसम्बन्धित्वेन यदस्तीति प्रसिद्ध कुसुमं- तदेव गगनसम्बन्धि-त्वेन नास्तीति निश्चीयते । तथा चास्तित्वं नास्तित्व च परस्परमविनाभूतमेव वर्तते ।

अब कदाचित् ऐसी शका करो कि शशशृग आदिमे नास्तित्व अस्तित्वके बिना ही देख पडता है क्योंकि शशके शृग तथा आकाशके पुष्प आदिका सर्वथा अभाव ही है इसका कारण उनकी असत्ता मात्र भान होनेसे अस्तित्वके बिना ही उनमे केवल नास्तित्व है तो नास्तित्व अस्तित्वसे व्याप्त है यह जो पूर्व प्रसगमे अनुमान किया है वह असगत हुआ? । यदि ऐसी शका करी तो उत्तरमे यह कहते है,—गौ और हरिण आदिके मस्तक-पर जो समवाय सबन्धसे सीग प्रसिद्ध है वह सीग शश तथा अश्व आदिके मस्तकपर नही है ऐसा निश्चय किया जाता है । ऐसे ही मेष बकरी आदिके शरीरमे जो रोम प्रसिद्ध है वही कछुवेके शरीरमें नही है । इसी प्रकार वनस्पति या गुलाब आदिमें

---

१ केवल साध्यके अधिकरणमे रहनेवाला अन्यत्र जिसका व्यतिरेक हो अर्थात् अभाव है । केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी, तथा अन्वयव्यतिरेकी, ये तीन प्रकारके हेतु न्यायशास्त्रमे माने है इनमेसे केवलान्वयी वह हेतु है जिसकी सब जगह अन्वयसत्ता है, जैसे प्रमेयत्व अभिधेयत्व इत्यादि । केवल व्यतिरेकी वह है जिसकी सत्ता केवल साधर्म्यके अधिकरणमे हो अन्य सब जगह जिसका व्यतिरेक (अभाव) हो । अन्वय-व्यतिरेकी वह है जिसकी पक्ष तथा सपक्षमे सत्ता हो अन्यत्र अभाव हो जैसे धूमवत्त्व २ साधर्म्यके बिना जो रहे ३ सत्ता ४ जैसे पृथिवीको पक्ष होनेसे जल आदिके भेदका अधिकरण है ऐसे ही घट भी पृथिवी होनेसे जलादिके भेदका अधिकरण है इसलिये वह भी पक्ष है ५ शश (खरगोश)का सीग आकाशका पुष्प इत्यादिका अभाव ही है इसलिये केवल नास्तित्व है अस्तित्व नहीं है

जो पुष्प प्रसिद्ध है वही आकाशमें नही है तो इसी रीतिसे यह वार्ता सिद्ध हुई कि जिन अग रोम तथा पुष्प आदि वस्तुओंकी गो मेष तथा चपा आदिमें अस्तित्व अर्थात् सत्ता है। उन्ही पदार्थोकी नास्तित्व अर्थात् असत्ता न होना शश कूर्म तथा आकाश आदिमें कहते है। तो नास्तित्व और अस्तित्व परस्पर अविनाभूत अर्थात् व्याप्त सिद्ध होगये।

अपरेतु-"यथा देवदत्तादिशब्दानां देवदत्तशरीरावच्छिन्नात्मन्येव शक्तिः, (१) देवदत्तो जानाति सुखमनुभवतीत्यादिप्रयोगानुरोधात, तथा मण्डूकादिशब्दानामपि मण्डूकादिशरीरावच्छिन्नात्मन्येव शक्तिरगीकरणीया। एव च कर्मादेशवशान्नानाजातिसम्बन्धमापन्नस्य जीवस्य (१) मण्डूकभावावाप्तौ तत्पदवाच्यतामास्कन्दत पुनर्युवतिजन्मन्यवाप्ते यश्शिखण्डकम्म एवायमिति प्रत्यभिज्ञानविपयैकजीवसम्बन्धित्वात्स एव मण्डूकशिखण्ड इति तस्य प्रसिद्धत्वान्मण्डूकशिखण्डस्यास्तित्वम्, मण्डूकशरीरावच्छिन्नात्मसम्बन्धिनो मण्डूकशरीरसमानकालीनशिखण्डस्याभावाच्च नास्तित्वम्। यदि च देवदत्तादिशब्दो मण्डूकादिशब्दश्च तत्तच्छरीरवाचक एव, देवदत्त उत्पन्नो विनष्ट इत्यादि व्यवहारात्, स च बन्धम्प्रत्येकत्वेन वर्तमानस्य जीवस्यापि बोधको भवतीति मतम्। तदा मण्डूकशरीराकारेण परिणतपुद्गल (२) द्रव्यस्याप्यनाद्यन्तपरिणामस्य क्रमेण युवतिमुक्ताहारादिकेशभावान्तपरिणामाच्छिखण्डकनिष्पत्तेर्मण्डूकशिखण्डस्यास्तित्वम्, मण्डूकशरीररूपेण परिणतपुद्गलद्रव्यस्य तत्काले केशपरिणामाभावाच्च नास्तित्वं सिद्ध्यति। एव वन्ध्यापुत्रशशनरखरविषाणकूर्मरोमादिष्वपि योज्यम्। आकाशकुसुमे तु-अस्तित्वनास्तित्वोपपत्तिरित्थम्। यथा वनस्पतिनाम कर्मोदयापादितविशेपस्य वृक्षस्य पुष्पमिति व्यपदिश्यते, पुष्पभावेन परिणतपुद्गलद्रव्यस्य तादृशवृक्षापेक्षया भिन्नत्वेपि तेन व्याप्तत्वात्, तथाऽऽकेशेनापि पुष्पस्य व्याप्तत्व समानमित्याकाशकुसुममिति व्यपदेशो युक्त॥ अथ मल्लिकाकृतोपकारापेक्षया मल्लिकाकुसुममिति व्यपदिश्यते, नत्वाकाशकुसुममिति, कुसुमस्याकाशेनोपकाराभावात्, इति चेन्न;-आकाशकृतावगाहनरूपोपकारमादायाकाशकुसुममिति व्यपदेशस्य दुर्वारत्वात्॥ किं च -वृक्षात्प्रच्युतमपि कुसुममाकाशान्नप्रच्यवत इति नित्यमेवाकाशसम्बन्धो वर्तते॥

और अन्य वादीगणका विचार इसी विषयमे ऐसा है॥ जैसे देवदत्त आदि शब्दोंकी शक्ति देवदत्त शरीरसहित आत्मामे अर्थात् यह देवदत्त शब्द देवदत्तके शरीरमें जो आत्मा उस अर्थको कहता है। देवदत्त जानता है देवदत्त सुखका अनुभव करता है। इत्यादि प्रयोगके अनुरोधसे देवदत्तके शरीरसबन्धी आत्माहीका बोध होता है, क्योंकि जानना तथा सुख आदिका अनुभव करना यह आत्माहीका धर्म्म है न कि शरीरका। इसी प्रकार मण्डूक

---

१ कछुवा वा कच्छव २ शब्दमे अर्थ प्रगट करनेका सामर्थ्य। जैसे घटशब्द कम्बुग्रीवरूप व्यक्तिको कहता है ३ यद्यपि सुख दुःख आदिका अनुभव शरीर तथा मनके सम्बन्धसे आत्माको होता है तथापि जिस आत्माकी सत्तासे सुख आदिका अनुभव तथा अन्य ज्ञान शरीरमे होते है उसीका धर्म्म मानके ऐसा कथन है और ज्ञान तथा सुख दु ख आदिका अवच्छेदक शरीर है इस हेतुसे देवदत्त आदि शब्दोंकी शक्ति शरीरमात्रमें ही है इस भ्रमको दूर करनेको शरीरसम्बन्धी आत्मामे शक्ति है यह कथन है ४ मेडक जो वर्षामे अधिक होते है.

आदि शब्दोंकी भी शक्ति मण्डूक शरीरसबन्धी आत्माहीमें अगीकार करनी चाहिये इस प्रकारके सिद्धान्तसे कर्म्मके वशसे नाना प्रकारकी जातिसे सबन्ध रखनेवाले जीवका जब कर्मके ही वशसे मण्डूकका जन्म प्राप्त होता है अर्थात् जब आत्मा अपने कर्मोंके आधीनसे मोर आदि अनेक योनियोंमें भ्रमते २ मण्डूकका शरीर धारण करते हुए मण्डूक शब्दसे कहा जाता है और युवतिमें पुन जन्म मिलनेपर प्रत्यभिज्ञान होनेसे जो यह शिखण्डक था मोर शिखाधारी जीव था वही यह मण्डूक शरीरधारी जीव है। क्योंकि एक ही जीव नाना शरीर धारण करता है तो इस प्रकार मयूरदशामें शिखण्डके प्रसिद्ध होनेसे मेंडक दशामें मण्डूक शिखण्डके अस्तित्वका बोध होता है, और मण्डूक शरीरके साथ संबन्ध रखनेवाला जो आत्मा है, उसको मण्डूकका शरीर धारण करनेके समयमें केशका अभाव होनेसे मण्डूक शिखण्डका नास्तित्व भी प्रसिद्ध हो गया। और यदि देवदत्त उत्पन्न हुआ देवदत्त नष्ट होगया इत्यादि व्यवहारको देखकर देवदत्त आदि शब्द तथा मण्डूक आदि शब्द भी केवल देवदत्त आदि तथा मण्डूक आदि शरीरमात्रके ही वाचक है ऐसा मत है, तब भी अनादि कालसे बन्धके प्रतिशरीरके साथ एकता अर्थात् अभेदरूपताको प्राप्त जो जीव है उसीके बोधक देवदत्त आदि शब्द हैं, यही तात्पर्य शरीरवाचक दशामें भी है तब उस दशामें भी मण्डूकशरीरके आकारमें परिणत जो पुद्गल द्रव्य है, उस पुद्गल द्रव्यके अनादि अनन्त कालसे अनेक आकारमें परिणाम होते रहते है। तो इस परिणामके चक्रमें कदाचित् मण्डूकका शरीर नष्ट होके खेतमें मृत्तिका वा खात होके पुन वही खात धान्य वा किसी शाकरूपमें परिणत होके वा स्त्री पुरुषका भोजन होके क्रमसे पुरुषके वीर्य तथा स्त्रीके शोर्णित रूपताको प्राप्त होता हुआ केश दशातक परिणत होके शिखण्डकी सिद्धि होनेसे मण्डूक शिखण्डकी अस्तिता, तथा जब मण्डूक शरीररूपमें परिणत जो पुद्गल द्रव्य है उस दशामें केशका अभाव होनेसे मण्डूक शिखण्डकी नास्तिता भी सिद्ध होगई। इसी रीतिके अनुसार वन्ध्यापुत्र, शश मनुष्य वा गर्दभ अश्व आदिके शृङ्ग तथा कर्मके आदिमें अस्तित्व नास्तित्वकी योजना करनी चाहिये तात्पर्य्य यह कि वन्ध्याशरीरधारी जीवके यद्यपि इस जन्ममें पुत्र नहीं है तथापि उसके शरीरके पुद्गल अवश्य ऐसे अनेक शरीररूपमें परिणत हुए थे जब उसके पुत्र हुये थे उस दशाको लेके वन्ध्यापुत्रमें अस्तित्व और वन्ध्या दशामें पुत्र न होनेसे नास्तित्व दोनों सिद्ध है, ऐसे ही शश मनुष्य तथा कूर्म आदि देहके साथ संबन्ध रखनेवाले जो जीव है उनका उन्हीं शश आदि शरीरोके पुद्गलोंसे रचित जो हरिण

---

१ यह वह देवदत्त है जिसको हमने कहीं अन्य स्थानमें देखा था इस प्रकारका अनुभव तथा स्मरणसे उत्पन्न वा सादृश्यको जतलानेवाला ज्ञान अथवा प्रमाण २ मोरजन्मके शरीरमें ३ चोटी अथवा चूडा ४ परिवर्तित अथवा बदलता हुआ अर्थात् एक आकारसे दूसरे आकारमे बदलता हुआ. ५ वस्तुका रूपान्तर होना जैसे भुक्त पदार्थका रस रुधिर तथा मेदा आदि परिणाम अथवा दुग्धका दधिरूप परिणाम. ६ लोहु.

तथा मेष आदि शरीरके साथ जब सबन्ध था तब शृग तथा रोमकी अस्तिता और शश मनुष्य तथा कूर्म आदि शरीरके साथ सबन्ध होनेसे शृग तथा रोमका अभाव होनेसे नास्तिता भी सिद्ध है। इस प्रकार नास्तित्व अस्तित्व व्याप्त है। यह अनुमान योग्य ही है। और आकाशके पुष्पमें तो अस्तित्व नास्तित्व इस प्रकारसे है,--जैसे वनस्पति नाम कर्मके उदयसे प्राप्त जो विशेष वृक्षरूपता है, उस वृक्षका पुष्प ऐसा कथन होता है, क्योंकि पुष्परूपमें परिणत जो पुद्गल द्रव्य है वह कथचित् उस वृक्षसे भिन्न है, इसलिये वृक्ष तथा पुष्पकी भेदविवक्षा मानकर तथा पुष्पसे वृक्ष व्याप्त होनेसे वृक्षका पुष्प यह व्यव हार होता है, ऐसे ही आकाशके साथ भी वृक्षवत् पुष्प व्याप्त है क्योंकि जब वृक्ष आदि सब कुछ आकाशमें है तो क्यों पुष्पकी व्याप्ति आकाशमें नहीं है, किन्तु पुष्पका संबन्ध आकाशके साथ अवश्य है इसलिये आकाशका पुष्प यह कथन युक्तिसे युक्त ही है, अब कदाचित् ऐसा कहो कि मल्लिका[3] वृक्षका तो उपकार पुष्पमें निज शाखा आदिमें धारण आदिसे है इसलिये मल्लिका वा मालतीका पुष्प ऐसा कथन होता है और आकाशका उपकार पुष्पके ऊपर कुछ नही है इसलिये आकाशका पुष्प ऐसा कथन योग्य नही है?। ऐसी शंका नहीं करसकते, क्योंकि आकाशमें भी पुष्प तथा वृक्ष है इसलिये आकाशका पुष्प ऐसा व्यवहार होता है क्योंकि जैसे वृक्ष अपने शाखा आदि देशमें रहनेको स्थान देता है ऐसे ही आकाश भी देता है। वही आकाशका उपकार है उस उपकारसे आकाशका पुष्प यह कथन किसी प्रकारसे नही रुक सकता। किन्तु इसके विषयमें यह विशेषता है कि वृक्षसे तो पुष्प गिरके उससे पृथक् भी हो सकता है, परन्तु आकाशसे गिरकर कहा जायगा जहा वह पुष्प गिरेगा वहां ही आकाश विद्यमान है इस कारण आकाशके साथ पुष्पका नित्य सबन्ध है इसलिये आकाशका पुष्प यह कथन योग्य ही है।

यदि च--मल्लिकालताजन्यत्वान्मल्लिकाकुसुममित्युच्यते, तदाऽऽकाशस्यापि सर्वकार्ये-ष्ववकाशप्रदत्वेन कारणत्वादाकाशकुसुममिति व्यवहारो दुर्वार ॥ अथाकाशापेक्षया पुष्पस्य भिन्नत्वान्नाकाशकुसुममिति व्यवहार इति चेत्--भिन्नत्व कि कथंचित्? सर्वथा वा? आद्ये मल्लिकाकुसुममित्यपि व्यवहारो माभूत्, मल्लिकापेक्षया कथञ्चिद्भिन्नत्वात्पुष्पस्य। अन्त्ये-त्वाकाशापेक्षया पुष्पस्य सर्वथाभिन्नत्वमसिद्धम्। द्रव्यत्वादिना कथंचिदभेदस्यापि सद्भावात्। तस्मान्मल्लिकाकुसुममाकाशकुसुममित्यनयोर्न कोपि विशेष इति सिद्धान्तस्यास्तिनास्त्यात्म-कत्वम् ॥ इत्याहु. ॥

और यदि ऐसा कहो कि मल्लिकाकी लतासे उत्पन्न होनेसे मल्लिकापुष्प ऐसा कहा जाता है, क्योंकि मल्लिका लता मूल भागसे जल आदि आहारका आकर्षण करके वृद्धिको प्राप्त होके अपनी शाखादिसे पुष्पको भी आहार आदि सम्प्रदानरूप उपकार करके उसको

---

१ भेड जिसके शरीरके रोमके कम्बल दुशाले आदि बनते हैं २ एक प्रकारका सबन्ध रहना अथवा स्थिति ३ एक प्रकारका वृक्ष

उत्पन्न करती है, यह कथन भी युक्त नहीं है, क्योंकि मल्लिका जब आहार आदि दानरूप उपकारसे पुष्पको उत्पन्न करती है तब आकाश भी सब कार्योंमें अवकाश सम्प्रदानरूप उपकारसे सब कार्योंका कारण है, इसलिये पुष्पको भी अपनेमें उत्पन्न तथा वृद्धिके लिये स्थान देनेसे आकाशका पुष्प यह व्यवहार भी अनिर्वारणीय[1] है, कदाचित् यह कहो कि आकाशकी अपेक्षासे पुष्प भिन्न पदार्थ है इसलिये आकाशका पुष्प यह व्यवहार नहीं हो सकता, तो इसका उत्तर यह है—आकाशकी अपेक्षा पुष्पको कथचित् भिन्न कहते हो? अथवा सर्वथा भिन्न? यदि प्रथम पक्ष है अर्थात् आकाशसे पुष्प कथचित् भिन्न है, तो कथंचित् भिन्न होनेसे जैसे आकाशका पुष्प यह व्यवहार नहीं मानते हो ऐसे ही मल्लिका-का पुष्प यह व्यवहार भी नहीं होगा क्योंकि मल्लिकाकी अपेक्षासे भी पुष्प कथचित् भिन्न[2] है और अन्तका पक्ष मानो, अर्थात् सर्वथा पुष्पको आकाशसे भिन्न मानो तो सर्वथा आकाशसे भिन्न नहीं हो सकता, क्योकि द्रव्यत्व[3]आदिरूपसे कथचित् आकाश और पुष्पका अभेद भी है, इस कारणसे मल्लिकाका पुष्प और आकाशका पुष्प इन दोनों व्यव-हारोंमें कोई विशेष नहीं है अर्थात् अपेक्षामें दोनोंका कथन हो सकता है। इसलिये इस स्याद्वादसिद्धान्तमें सब पदार्थ अस्ति तथा नास्ति स्वरूप है ऐसा अन्यवादी कहते है ॥

अथ—अस्त्येव जीव इत्यत्रास्तिशब्दवाच्यादर्थाद्भिन्नस्वभावो जीवशब्दवाच्योऽर्थस्स्यात्? अ-भिन्नस्वभावो वा? यद्यभिन्नस्वभावस्तदा जीवशब्दार्थोऽस्तिशब्दार्थश्चैक एवेति सामानाधि-करण्यविशेषणविशेष्यभावादिकं न स्यात्। घट कलश इत्यादि सामानाधिकरण्याद्यभाववत्। तदन्यतरपदाप्रयोगप्रसगश्च। कि च-सत्त्वस्य सर्वद्रव्यपर्यायविषयत्वात्तदभिन्नस्वभावस्यापि जीवस्य तथात्व प्राप्तमिति सर्वस्य तत्त्वस्य जीवत्वप्रसग। यदि पुनरस्तिशब्दवाच्यादर्थाद्भिन्न-एव जीवशब्दवाच्योऽर्थ कल्प्यते, तदा जीवस्यासद्रूपत्वप्रसग। अस्तिशब्दवाच्यादर्था-द्भिन्नत्वात्। प्रयोगश्च नास्ति जीव, अस्तिशब्दवाच्यापेक्षया भिन्नत्वात्, शशविषाणवत्। अस्तित्वस्य जीवाद्भिन्नत्ववत्सकलार्थेभ्योपि भिन्नत्वान्निराश्रयत्वादभावप्रसग। न च-जीवा-दिभ्यो भिन्नमप्यस्तित्व समवायेन जीवादिषु वर्तत इति वाच्य, तस्यान्यत्र निराकरणात्। इति चेत्, अत्रोच्यते। अस्तिशब्दवाच्यजीवशब्दवाच्यार्थयोर्द्रव्यार्थादेशादभिन्नत्वम्, तयो पर्या-यार्थादेशाद्भिन्नत्वमित्यनेकान्तवादिनां न कोपि दोष, तथा प्रतीते। इत्यग्रे व्यक्ती भविष्यति ॥

अब **'अस्ति एव जीवः'** कथचित् जीव है इस वाक्यमे अस्ति शब्दके वाच्य[4] सत्त्वरूप अर्थसे जीव शब्दका वाच्य अर्थ भिन्न[5] स्वभाव है, अथवा अभिन्न[6] स्वभाव है। यदि द्वितीय पक्ष मानते हो अर्थात् अस्ति शब्दका वाच्यार्थ और जीव शब्दका वाच्य अर्थ अभिन्न

---

१ कठिनतासे निवारण करनेके योग्य २ मल्लिकाके पुद्गल अन्य है और पुष्पके अन्य इसलिये दोनों भिन्न २ परमाणुओंसे बननेसे भिन्न हे ३ जैसे आकाश द्रव्य है ऐसे ही पुष्प भी पुद्गल द्रव्य है इस प्रकार द्रव्यत्वरूप धर्मसे आकाश और पुष्प अभिन्न है ४ जो शब्दसे कहा जाय। शब्द वाचक होता है और अर्थ उस शब्दसे कहा जाता है इससे वह वाच्य है जैसे अस्ति शब्दसे सत्त्व ५ अन्य स्वभाव सत्त्वसे अन्य स्वभाव असत्त्व (न होना) है ६ एक स्वभाव

स्वभाव है। ऐसा स्वीकार करते हो। तब तो जीव शब्दका अर्थ और अस्ति शब्दका अर्थ एक ही हुआ यह वार्ता सिद्ध हुई तो इस रीतिसे जीव और अस्तिका सामानाधिकरण्य[1] और विशेष्यविशेषणभाव[2] आदि सबन्ध नहीं होगा। जैसे घट कलश इत्यादि एक अर्थके वाचक[3] शब्दोंको सामानाधिकरण्य अथवा विशेष्यविशेषणभाव नहीं होता ऐसे ही जीव और अस्ति शब्दका भी नहीं होगा। और अस्ति तथा जीवका जब एक ही अर्थ है तब दोनोंमेंसे एक शब्दका प्रयोग न करना चाहिये। क्योंकि एकमें ही दूसरेका अर्थ गतार्थ है। और दूसरी बात यह भी है कि सपूर्ण द्रव्य तथा पर्य्याय सत्त्वके विषय है अर्थात् सब सत्त्वरूप है। तब सत्त्वसे अभिन्न स्वभाव जो जीव है वह भी सब द्रव्य तथा सब पर्यायरूप प्राप्त हुआ तो इस रीतिसे सब पदार्थोंको जीव रूपता प्राप्त हुई। और यदि इस दोषके निराकरणके लिये अस्ति शब्दके वाच्यार्थ सत्त्वसे भिन्न जीव शब्दका वाच्यार्थ मानते हो, तो सत्त्वसे भिन्न असत्त्वरूपता जीवकी प्राप्त हुई। क्योंकि अस्तिके वाच्यार्थ सत्त्वरूपसे भिन्न तो असत्त्व ही है और इस विषयमें ऐसा अनुमानका भी प्रयोग हो सकता है, कि जीव नहीं है। क्योंकि वह अस्ति शब्दके वाच्यार्थ सत्त्वसे भिन्न स्वरूप है जैसे शशका शृग, तथा अस्तिता जैसे जीवसे भिन्न है ऐसे ही सपूर्ण पदार्थोंसे भी भिन्न होनेसे अस्तिताका[4] कोई आश्रय न होनेके कारण अभाव वादकी प्राप्ति होगी कदाचित् यह कहो कि यद्यपि अस्तित्व जीव आदिसे भिन्न स्वभाव है तथापि वह[5] समवाय सबन्धसे जीव आदिमें रहता है। तो यह भी नही कह सकते, क्योंकि समवाय सबन्धका इसी ग्रथमें अन्य स्थानमे खडन किया गया है। यदि ऐसी शका जीव तथा अस्ति शब्दके वाच्यार्थ विषयमे की जाय, तो इसी विषयमे उत्तर कहते है,—कि अस्ति शब्द तथा जीवशब्दके[6] वाच्य अर्थ दोनों द्रव्यत्वरूप अर्थादेशसे अर्थात् द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे तो अभिन्नरूप है, और पर्य्यायरूप अर्थादेश अर्थात् पर्य्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे दोनोके वाच्यार्थ भिन्नरूप है, इसलिये अनेकान्त वादी जैनोंके मतमें कोई दोष नहीं है। क्योंकि द्रव्यत्वरूपसे सब पदार्थ अभिन्न और पर्य्यायरूपसे भिन्न है। यही अनुभव सिद्ध है। यह विषय आगे चलके स्पष्टरूपसे निरूपण किया जायगा।

इति प्रथमद्वितीयभंगद्वयं निरूपितम्।

इति द्विवेद्युपनामकाचार्योपाधिधारिठाकुरप्रसादशर्मविरचिता सप्तभङ्गतरंगिण्या भङ्गद्वय-व्याख्या समाप्ता.

---

१ एक आधारमें रहनेवाला धर्म्म जैसे अस्तित्व और जीवत्व ये दोनों एक आधार जीवमें रहते है २ एक प्रकारका संबन्ध जैसे सत्त्व विशेषण जीवरूप विशेष्यमें रहता है सो नहीं बन सकता क्योंकि ये दोनो एक ही हो गये ३ अर्थको कहनेवाला ४ सत्ता, जैसे अस्ति स्वभावसे जीव भिन्न है ऐसे अन्य पदार्थ भी हो सकते हैं तो सत्ताके आश्रय कैसे होजाएगे ५ अस्तित्व वा सत्ता. ६ जीवके

अथ तृतीयभंगस्तु निरूप्यते ।

घटस्स्यादस्ति च नास्ति चेति तृतीय । घटादिरूपैकधर्मिविशेष्यकक्रमार्पितविधिप्रतिषेध-प्रकारकबोधजनकवाक्यत्वं तल्लक्षणम् । क्रमार्पितस्वरूपपररूपाद्यपेक्षयाऽस्तिनास्त्यात्मको घट इति निरूपितप्रायम् ।

अथ तृतीयभङ्गव्याख्या निरूप्यते.

"घटः स्यादस्ति च स्यान्नास्ति च" किसी अपेक्षासे घट है किसी अपेक्षासे नहीं है, यह तीसरा भङ्ग है, घटआदिरूप एक धर्म्मी विशेष्यवाला तथा क्रमसे योजित विधि प्रतिषेध विशेषणवाला जो बोध तादृश बोधका जनक वाक्यत्व यह तृतीय भङ्गका लक्षण है अर्थात् जिस ज्ञानमें घटआदिरूप एक पदार्थ विशेष्य हो और क्रमसे योजना किये हुए सत्त्व असत्त्व स्वरूप विशेषण हो ऐसा जो ज्ञान उस ज्ञानवाला जो वाक्य यह ही तृतीय भङ्गका लक्षण है । अब क्रमसे अर्पित अर्थात् योजितस्वरूप द्रव्य आदिकी अपेक्षासे अस्तित्वका आश्रय, और पररूप द्रव्य आदिकी अपेक्षासे नास्तित्वका आश्रय घट, यह तृतीय वाक्यार्थ होनेसे लक्षणसमन्वय होगया प्रथम द्वितीय भङ्गकी व्याख्यामें भी प्राय यह विषय निरूपित है ।

सहार्पितस्वरूपपररूपादिविवक्षाया स्यादवाच्यो घट इति चतुर्थ. । घटादिविशेष्यका वक्तव्यत्वप्रकारकबोधजनकवाक्यत्व तल्लक्षणम ।

इसी प्रकार सह अर्पित[1] अर्थात् साथ ही योजितस्वरूप द्रव्य आदि चतुष्टय तथा पररूप द्रव्य आदि चतुष्टयकी विवक्षा[2] करनेपर **'स्यादवक्तव्य एव घटः'** किसी अपेक्षासे घट अवा-च्य[3] है यह चतुर्थ भङ्ग प्रवृत्त होता है । घट आदि पदार्थरूप विशेष्यवाला, और अवक्तव्यत्व विशेषणवाला जो बोध तादृश बोधका जनक वाक्यत्व, इस चतुर्थ भङ्गका लक्षण है, अर्थात् जिस ज्ञानमें घट आदिमेंसे कोई एक पदार्थ तो विशेष्य हो और अवक्तव्यत्व विशेषण हो उस ज्ञानको उत्पन्न करानेवाला जो वाक्य तादृश वाक्यता ही इस भङ्गका लक्षण है इस रीतिसे कथंचित् अवक्तव्यत्वका आश्रयीभूत घट, ऐसा इस वाक्यसे अर्थज्ञान होता है ।

ननु–कथमवक्तव्यो घट., इति चेदत्र ब्रूम । सर्वोपि शब्द प्रधानतया न सत्त्वासत्त्वे युग-पत्प्रतिपादयति, तथा प्रतिपादने शब्दस्य शक्त्यभावात्, सर्वस्य पदस्यैकपदार्थविषयत्वसिद्धे । अस्तीतिपद हि सत्तावाचक नासत्त्व प्रतिपादयति, तथा नास्तीतिपदमसत्त्ववाचक न सत्तां बोधयति । अस्त्यादिपदस्यास्तित्वनास्तित्वोभयधर्मवाचकत्वे च तदन्यतरपदाप्रयोगप्रसंग' ।

प्रश्न.–अवक्तव्य अर्थात् कहनेको अशक्य कैसे घट होसकता है, किसी न किसी रीतिसे सभी पदार्थ कहे जाते हैं? यदि ऐसी शंका की जाय तो यहांपर कहते हैं;–सब शब्द एक कालमें ही प्रधानतासे सत्त्व तथा असत्त्वको नहीं प्रतिपादन[4] कर सकते क्योंकि एक कालमें ही प्रधानतासे सत्त्व तथा असत्त्व दोनोंको प्रतिपादन करनेकी शब्दमें शक्ति[5] ही

---

१ मिला हुआ. २ कहनेकी इच्छा ३ जो कहा नही जाय ४ प्रगट करनेमे ५ सामर्थ्य

नहीं है संपूर्ण शब्द एक कालमें प्रधानतासे एक ही पदार्थको अपना विषय करके कहते है इसलिये एक पदार्थकी शक्ति एक ही पदार्थ विषय करनेवाली सिद्ध होती है । जैसे अस्ति यह पद सत्तारूप अर्थको ही कहता है, न कि असत्त्वरूप अर्थको ऐसे ही नास्ति यह पद भी असत्त्वरूप अर्थको ही बोधित करता है न कि सत्तारूप अर्थको । यदि अस्ति आदिमेंसे एक ही पद सत्ता तथा असत्ता दोनों अर्थोंका वाचक हो तो इन अस्ति और नास्ति दोनों पदोंमेंसे एकका प्रयोग न करना चाहिये क्योंकि जब एक ही पदसे सत्त्व और असत्त्व दोनों अर्थ कहेजाते है तब दोनों पदकी क्या आवश्यकता है । इससे यह वार्ता सिद्ध होगई कि एक शब्द वा पद एक कालमें प्रधानतासे एक ही अर्थको कह सकता है, न कि दो वा उससे अधिक ।

ननु–सर्वेषां पदानामेकार्थत्वनियमे नानार्थकपदोच्छेदापत्ति', इति चेन्न,–गवादिपदस्यापि स्वर्गाद्यनेकार्थविषयतया प्रसिद्धस्य तत्त्वतोऽनेकत्वात्, सादृश्योपचारादेव तस्यैकत्वेन व्यवहरणात् । अन्यथा–सकलार्थस्याप्येकशब्दवाच्यत्वापत्तेरर्थभेदेनानेकशब्दप्रयोगवैफल्यात् । यथैव हि समभिरूढनयापेक्षया शब्दभेदाद्ध्रुवोऽर्थभेदस्तथाऽर्थभेदादपि शब्दभेदस्सिद्ध एव । अन्यथा वाच्यवाचकनियमव्यवहारविलोपात ।

प्रश्न –सपूर्ण पद एक ही अर्थके वाचक होते है । न कि अनेक अर्थके यदि ऐसा नियम मानोगे तो नाना अर्थके वाचक जो शब्द है उनका उच्छेद ही होजायगा[२] । ऐसी शङ्का नही कर सकते है । क्योंकि गो आदि शब्द जो पशु पृथिवी किरण तथा स्वर्ग आदि अर्थके वाचकरूपसे प्रसिद्ध है, वे भी यथार्थमें अनेक ही है किन्तु एक प्रकारके उच्चारण आदि धर्मोंकी समानतासे उनमें ऐकत्वका व्यवहार लोकमें है, यदि ऐसा न मानो तो सपूर्ण एक ही शब्दके वाँच्य होनेसे अर्थ भेद मानकर जो अनेक शब्दका प्रयोग किया जाता है यह व्यर्थ होजायगा । क्योंकि समभिरूढ नयकी अपेक्षा जैसे शक्र इन्द्र पुरन्दर आदि शब्दभेदसे अर्थका भी भेद अवश्य माना गया है ॥ ऐसे ही अर्थके भेदसे शब्दभेद भी सिद्ध ही है । ऐसा न माननेसे अर्थात् अर्थके भेद होनेपर भी शब्दका भेद न माननेसे वाच्य वाँचक जो नियम है उसका लोप हो जायगा ॥

---

१ भावार्थ यह है कि (सैन्धवमानय) नमक वा घोडा ला, यहां सैन्धव शब्द एक ही लवण वा घोडेरूप अर्थका वाचक है । भोजन समयमें लवण और गमन ममयमें अश्वका वाचक है । न कि लवण और घोडे दोनोंका । यदि वक्ताको दोनोंकी जरूरत होती तो (सैन्धवलवणे आनय) लवण तथा अश्व दोनों ला ऐसा कहता । इसलिये (सकृदुच्चरित शब्द एकमेवार्थ गमयति) इस न्यायसे (सैन्धवमानय) इत्यादिमे सैन्धवादि शब्द एक ही अर्थके वाचक होते है २ यद्यपि गो शब्द एक ही है तथापि "प्रत्युच्चारण शब्दा भिद्यन्ते" ॥ प्रतिवारके उच्चारणमें शब्दका भेद होता है इस पक्षको लेकर शब्दका भेद माना है और वही गकार तथा ओकार पुनः उच्चारण किया है इस उच्चारण सादृश्यको लेकर एकता अथवा अभेद है. ३ अभिधेय अर्थात् प्रतिपाद्य पदार्थ । शब्द तथा अर्थमें ४ वाच्यवाचकभाव संबन्ध है उसमें शब्द तो वाचक (कहनेवाला) और वाच्य (जो कहा जाय) अर्थ होता है जैसे गो=ग्×ओ=गो यह ग् तथा ओ वाचक है

एतेन-एकस्य वाक्यस्य युगपदनेकार्थविषयत्वं प्रत्याख्यातम्, स्यादस्तिनास्त्येव घटः-स्वरूपपररूपादिचतुष्टयाभ्यामिति वाक्यस्यापि क्रमार्पितोभयविषयधर्मतयोररीकृतस्य उपचारादेवैकत्वांगीकारात् ॥ अथवा-तत्र क्रमशो विवक्षितं यदुभयप्राधान्यमेकं, तदेवास्तिनास्तिशब्दाभ्यामभिहितमिति तादृशवाक्यस्यैकार्थाभिधायित्वादेवैकवाक्यत्वमिति न दोष. सर्वस्य वाक्यस्यैकक्रियाप्रधानतयैकार्थविषयत्वप्रसिद्धेरेकार्थबोधनशक्तिश्शब्दस्य सिद्धा। न हि शब्दानां वचनसामर्थ्यं सूचनसामर्थ्यं वाऽतिक्रम्यार्थबोधने प्रवृत्तिस्सम्भवति। अस्तिशब्दस्य हि सत्त्वमात्रवचने सामर्थ्यविशेषो नासत्त्वाद्यनेकधर्मवचने । निपातानां वाचकत्वपक्षे स्यादिति शब्दस्यानेकान्तसामान्यवचने सामर्थ्यविशेषो न पुनरेकान्तवचने, नाप्यनेकान्तविशेषवचने, तेषां द्योतकत्वपक्षे चानेकान्तसूचने सामर्थ्यविशेषो नान्यत्रेति वचनसूचनसामर्थ्यमतिक्रम्य शब्दप्रयोगो वृद्धव्यवहारेषु क्वापि न दृष्टचर इति ॥

इस पूर्वोक्त कथनसे एक ही वाक्य समान कालमें अनेक पदार्थोंको कहता है यह कथन भी खण्डित हो गया। और "स्यादस्ति नास्ति एव घटः" किसी अपेक्षासे घट है और किसी अपेक्षासे नही है, इत्यादि वाक्यमे भी क्रमसे योजित स्वरूप आदि चतुष्टय तथा पररूपादि चतुष्टय उपचारसे ही एक वाक्य और दूसरे अर्थके लिये दूसरा वाचक चाहिये इसलिये एक ही शब्द दूसरा अर्थ कहनेको दूसरा होजाता है । अथवा "स्यादस्ति नास्ति एव" इस वाक्यमें क्रमसे कथन करनेको अभीष्ट जो सत्त्व असत्त्व एतदुभयरूप एक प्राधान्य है, वही अस्ति तथा नास्ति शब्दसे कहागया है इस रीतिसे उस वाक्यको एक अर्थ वाचकता होनेसे एक वाक्यरूपता ही है, इसलिये कोई दोष नहीं है, क्योंकि सब वाक्योंकी एक क्रियाकी प्रधानतासे एक अर्थ विषयता सिद्ध होनेसे ही एक अर्थको बोध करानेकी शक्ति शब्दकी सिद्ध होती है। शब्दोकी कथनरूप शक्ति तथा ज्ञापनरूप शक्तिको उलघन करके अर्थ बोध करानेमें प्रवृत्तिका सभव नही होसकता, अर्थात् वाचकरूप शक्ति तथा द्योतनरूप शक्तिके द्वारा ही सपूर्ण शब्द अर्थ बोध करानेमें प्रवृत्त होते है। अस्ति इस शब्दकी सत्त्वमात्ररूप अर्थके कथनमें विशेष शक्ति है न कि असत्त्व आदिरूप अनेक अर्थोंके कथनमें। और इसी रीतिसे जब निपातोंका वाचकत्व पक्ष है तब 'स्यात्' इस शब्दकी अनेकान्त सामान्यरूप अर्थके कथनमें शक्ति विशेष है, न कि एकान्तरूप अर्थके अथवा अनेकान्त विशेषरूप अर्थके कहनेमें शक्ति है। और निपातोंके द्योतकत्व पक्षमें स्यात् शब्दकी अनेकान्तरूप अर्थके ज्ञापन करनेमें शक्ति विशेष है, न कि अन्य किसी अर्थके द्योतित करनेमें, इस रीतिसे कथन और सूचनरूप सामर्थ्यके सिवाय

और गौ पशुका मास पिंडरूप अर्थ वाच्य है दूसरे पृथिवी आदि अर्थरूप वाच्यका वाचक दूसरा ही गो शब्द समझा जाता है अत एव वाच्य वाचक नियमका निर्वाह होता है

१ सत्त्व असत्त्व एतदुभयरूप अर्थ कहनेकी शक्ति २ अभिधा अथवा वाचकता शक्ति ३ लक्षण वा द्योतकतारूपसे पदार्थके सूचनकी शक्ति ४ निपातोंकी वाचकता तथा द्योतकता दोनों पक्ष सिद्धकर चुके है. ५ एक प्रकारका सामर्थ्य

शब्दोंका उपयोग कहीं भी शब्दोंके व्यवहारमें दृष्टिगोचर नहीं होता, अर्थात् वाचकतारूप शक्ति अथवा द्योतकतारूप शक्तिको ही स्वीकार करके विद्वान् शब्दोंका प्रयोग करते है, अन्यथा नहीं।

ननु–यथासङ्केतं शब्दप्रवृत्तिदर्शनाद्युगपत्सदसत्त्वयोस्सङ्केतितश्शब्दस्तद्वाचकोऽस्तु, शतृशानचोर्द्वयोस्संकेतितसनितिसंज्ञाशब्दवत्; युगपच्चन्द्रसूर्ययोस्संकेतितपुष्पवन्तादिपदवद्वा। इति चेन्न;–संकेतस्यापि वाच्यवाचकशक्त्यनुरोधेनैव प्रवृत्ते । न हि वाच्यवाचकशक्त्यतिलंघनेन संकेतप्रवृत्तिर्दृष्टचरी। यथा- कर्तुरयसो दारुलेखने शक्तिर्न तथा वज्रलेखनेस्ति, यथा वा वज्रलेखने तस्याशक्तिर्न तथा दारुलेखने, यथा च दारुण· कर्मणोऽयसा लेख्यत्वे शक्तिर्न तथा वज्रस्यास्ति, यथा वा वज्रस्य तत्राशक्तिर्न तथा दारुणोपीति, निश्चय । एवं शब्दस्यापि सकृदेकस्मिन्नेवार्थे प्रतिपादनशक्तिरनेकस्मिन्नर्थे पुन· प्रतिपादनाशक्ति., तथा–एकस्यैवार्थस्यैकपदवाच्यता शक्तिर्न पुनरनेकस्यापीति निश्चयः। पुष्पवन्तादिशब्दानामपि क्रमेणार्थद्वयप्रतिपादन एव सामर्थ्यमिति न दोष. ॥

प्रश्न –सकेतके अनुसार ही शब्दोंकी प्रवृत्ति देखनेसे एक कालमें ही सत्त्व तथा असत्त्व इन दोनों अर्थोंमें अस्ति आदि शब्दका सकेत करनेसे दोनों ही अर्थोंका वाचक क्यों न अस्ति आदि शब्द हो ? जैसे व्याकरण शास्त्रमें 'सन्' यह सज्ञा शतृ तथा शानच् इन दोनों प्रत्ययरूप अर्थमें संकेतित है, इसलिये धातुसे सन् सज्ञक प्रत्यय हो ऐसा कहनेसे शतृ और शानच् दोनों प्रत्ययोंके होनेसे "भवन्" तथा एधमान·, इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते है और एक कालमे ही पुष्पवत् शब्दसे सूर्य तथा चन्द्रमाका बोध होता है, यदि ऐसा न हो तो पुष्पवन्तौ ऐसा कहनेसे एक कालमें ही सूर्य्य चन्द्रमाका ज्ञान कैसे हो ? । ऐसी शका नही कर सकते, क्योंकि सकेत कियेहुये शब्दोंको भी वाच्य वाचक शक्तिके अनुसार ही प्रवृत्ति होती है, कहीं भी वाच्य वाचक शक्तिका उल्लघन करके सकेतकी प्रवृत्ति दृष्टि गोचर नही होती । जैसे लोहरूप कर्ताकी काष्ठके छेदन भेदन आदि कार्य्यमें शक्ति है ऐसी वज्रके छेदन भेदन आदिमें नही है, और जैसे वज्रके छेदन भेदन तथा लेखनमें शक्तिका अभाव है ऐसे ही काष्ठके छेदन भेदनादिमें शक्तिका अभाव नही है, और जैसे काष्ठरूप कर्ममे यह शक्ति है कि लोहेसे खुद जाना वा छेदित होना ऐसी वज्ररूप कर्म्ममें नही है कि लोहेसे छिन्न भिन्न वा लिखित हो यह निश्चय है । इसी प्रकार शब्दमें भी एक कालमें एक ही अर्थकी कथनकी शक्ति है

---

१ इस शब्दसे यह अर्थ बोधित करना चाहिये इस प्रकारका अनादि कालका ईश्वरीय अथवा मानवीय सकेत (इसारा) २ जो शब्द जिस अर्थमें जिन २ शास्त्रकी परिभाषाके अनुसार संकेतित है. उस सकेत कियेहुये अर्थमें ही (उस सकेत किये अर्थको ही कहनेमे) उस शब्दकी वाचकता शक्ति है न कि अन्य अर्थमें ३ लिखाजाय, संसारके पदार्थोंमे भी जहा जैसी शक्ति प्रकृतिके नियमसे स्थिर है उसीके अनुसार व्यवहार होता है

न कि एक कालमें अनेक अर्थोंकी कथनकी शक्ति। और जैसे शब्दमें यह शक्ति है कि वह एक कालमें एक ही अर्थको कहे। ऐसे ही अर्थमें भी यह शक्ति है कि वह एक ही शब्दका वाच्य हो अर्थात् एक ही शब्दसे कहाजाय, शब्द तथा अर्थकी शक्तिसे यही निश्चय होता है। और 'पुष्पवन्तौ' इत्यादि शब्दोंमें जो सूर्य चन्द्र आदि दो अर्थके बोधन करनेकी शक्ति है वह भी क्रमसे अथवा शब्दकी आवृत्तिसे है, इसलिये कोई दोष नहीं है॥

ननु-सेनावनयुद्धपंक्तिमालापानकग्रामनगरादिशब्दानामनेकार्थप्रतिपादकत्वं दृष्टमिति चेन्न; -करितुरगरथपदातिसमूहस्यैवैकस्य सेनाशब्देनाभिधानात्, वृक्षसमूहस्य वनशब्देन, पुष्पसमूहस्य मालाशब्देन, गुडादिद्रव्यसमूहस्य पानकशब्देन, प्रासादादिसमूहस्य नगरशब्देन, चाभिधानान्नैकशब्देनानेकार्थप्रतिपादनं दृश्यते।

प्रश्न'-सेना, वन, युद्ध, पंक्ति, माला, तथा पानक, इत्यादि शब्दोंकी अनेक अर्थ कहनेकी शक्ति दृष्ट है क्योंकि सेनासे अश्व हस्ति आदि, वनसे अनेक प्रकारके वृक्ष आदि, युद्धसे अनेक प्रकार शस्त्र अस्त्रका चलना, प्राणका वियोग जय पराजय आदि अनेक व्यापाररूप, पंक्तिसे अनेक पदार्थोंकी श्रेणि, मालासे अनेक प्रकारके मणि आदि, और पानकसे अनेक प्रकारके विलक्षण रसके स्वाद तथा नाम, नगर आदिसे अनेक प्रकारके मनुष्य आदि अर्थोंका बोध होता है, इसलिये यह शब्द एक कालमें ही अनेक अर्थोंको कहते है तो एक शब्द एक ही अर्थको कहता है यह सिद्धान्त नही बन सकता[२]। सो ऐसी शंका भी नहीं कर सकते;-क्योकि हस्ती, अश्व, रथ, तथा पैदल मनुष्य आदिका समूहरूप, एक ही अर्थ सेना शब्दसे कहा जाता है, ऐसे ही वन शब्दसे अनेक प्रकारके वृक्षोंका समूह, माला शब्दसे पुष्प अथवा मणि आदिका समूह, युद्ध शब्दसे शस्त्र अस्त्रादिकका व्यापार, पक्ति शब्दसे श्रेणीबद्ध पदार्थ, पानक शब्दसे जड आदि द्रव्योंसे विलक्षण रसका समूह, तथा नगर ग्राम आदि शब्दसे गृह अट्टालिका आदिका समूहरूप, एक ही अर्थ कहा जाता है, इसलिये सेना आदि शब्दोंको भी अनेक अर्थोंकी प्रतिपादनशक्ति नही देख पडती।

नन्वेवं-वृक्षावितिपदं वृक्षद्वयबोधक वृक्षा इति च बहुवृक्षबोधकं कथमुपपद्यत इति चेत्? पाणिन्यादीनामेकशेषारम्भाज्जैनेन्द्राणामभिधानस्य स्वाभाविकत्वादिति ब्रूमहे। तत्रैकशेषपक्षेद्वाभ्यामेव वृक्षशब्दाभ्यां वृक्षद्वयस्य बहुभिरेव वृक्षशब्दैर्बहूना वृक्षाणामभिधानान्नैकशब्दस्य सकृदनेकार्थबोधकत्वम्। लुप्तावशिष्टशब्दयो साम्याद्वृक्षरूपार्थस्य समानत्वाच्चैकत्वोपचारात्तत्रैकशब्दप्रयोगोपपत्ति.। अभिधानस्य स्वाभाविकत्वपक्षे च वृक्षशब्दो द्विबहुवचनान्तः स्वभावत एव द्वित्वबहुत्वविशिष्टं वृक्षरूपार्थमभिदधाति। वृक्षावित्यत्र हि वृक्षत्वावच्छिन्नो वृक्षशब्दार्थ, द्वित्वं च द्विवचनार्थ., प्रत्ययार्थस्य प्रकृत्यर्थेऽन्वयान् द्वित्वविशिष्टौ वृक्षाविति बोध.। वृक्षा इत्यत्र च बहुवचनार्थो बहुत्वमिति बहुत्वविशिष्टा वृक्षा इति बोध।

---

१ अर्थ, जैसे शब्द किसी विशेष अर्थके कहनेमें नियत है ऐसे ही अर्थ भी खास अपने वाचक शब्दसे ही कहाजाता है   २ शब्दोंमे अर्थ कहनेकी सामर्थ्य

प्रश्नः—पूर्वोक्त रीति स्वीकार करने पर भी । वृक्षौ. इस पदके कहनेसे दो वृक्षका तथा वृक्षा', ऐसा पद कहनेसे बहुत वृक्षोंका ज्ञान कैसे होता है यह शका [2] भी निष्फल है। क्योंकि व्याकरण शास्त्रके आचार्य्य श्री पाणिनि आदि ऋषियोंके मतसे तो यहां एकशेष आरम्भ किया है, अर्थात् जब वृक्ष आदि शब्दके आगे द्विवचन 'औ' आदि विभक्ति लगाई जाती है तब 'वृक्ष वृक्ष' ऐसे दो वृक्ष शब्द आते है और बहुवचन 'जस्' आदि विभक्ति जब लगाई जाती है तब 'वृक्ष वृक्ष वृक्ष वृक्ष' ऐसे बहुत शब्द आते है उनमेंसे द्विवचनमें तो एक वृक्ष शब्दका लोप हो जाता है और एक वृक्ष रह जाता है तथा बहु बचनमें भी जो बहुत शब्द लिये जाते है उन सब शब्दोका लोप होजाता है, इस प्रकारसे उन सब शब्दोंका लोप करके एक शेष रहता है इससे दो वृक्ष वा अनेक वृक्षका बोध होता है और जैनेन्द्र व्याकरणके मतमे तो जस् आदि विभक्तिके सन्निधानमें दो अथवा अनेक वृक्ष आदिरूप अर्थके कहनेकी शब्दमें ही शक्ति मानी है ऐसा कहते है । इन [4]दोनोंमेंसे एक शेष पक्षमें दो वृक्ष शब्दोंसे ही दो वृक्षरूप अर्थका तथा बहुत वृक्ष शब्दोंसे अनेक वृक्ष-रूप अर्थका कथन होनेसे एक शब्दको एक कालमें अनेक अर्थ बोधकता नही है, क्योंकि जिस शब्दका लोप होगया है उस शब्द तथा जो शेष है उनकी समानता है । वृक्षरूप अर्थके समान होनेसे वहांपर एकत्वका उपचार मानके एक ही वृक्ष शब्दका प्रयोग किया जाता है, तात्पर्य्य यह है कि एकशेष पक्षमें जो शब्द शेष रहजाता है वही लुप्त हुये शब्दोंके अर्थको कहता है, अर्थात् एक ही शेष वृक्ष शब्द अनेक दो वृक्षोंके स्थानमे समझा जाता है, और जैन मतके अनुसार स्वाभाविक द्वित्व वा बहुत्वरूप अर्थके कथन पक्षमें भी द्विवच-नान्त वृक्ष शब्द द्वित्व सख्या सहित वृक्ष तथा बहुवचनान्त वृक्ष शब्द बहुत्व सख्या सहित वृक्षरूप अर्थको स्वभावसे ही कहता है, "वृक्षौ" यहांपर वृक्षत्व धर्म्मसे अवच्छिन्न अर्थात् सहित वृक्ष यह तो वृक्ष शब्दका अर्थ है और द्वित्वरूप अर्थ "औ" द्विवचनकी विभक्तिका अर्थ है, प्रत्ययके अर्थ द्वित्वका प्रकृतिके अर्थ वृक्षमे अन्वय होता है, इसलिये द्वित्व सहित वृक्ष अर्थात् दो वृक्ष यह 'वृक्षौ' इस शब्दका अर्थ होता है, और इस रीतिसे "वृक्षा." यहांपर बहुत्वरूप अर्थ बहुवचन प्रत्ययका है उसका भी प्रकृत्यर्थ वृक्षमें अन्वय होता है इसलिये बहुत्व सहित वृक्ष, अर्थात् बहुत वृक्ष यह अर्थ वृक्षा इस पदका होता है ।

---

१ शब्दोंमे अनेक अर्थ कहनेकी शक्ति नहीं है तो एक वृक्ष शब्द दो वृक्षरूप अर्थोंको कैसे कह सकता है इसी अभिप्रायसे शका है वृक्ष शब्दके आगे द्वित्वरूप अर्थको प्रकट करनेवाली औ विभक्ति आती है वृक्ष० औ=वृद्धि होनेसे वृक्षौ. २ वृक्ष शब्दके आगे जस् विभक्ति लगानेसे वृक्ष+अस्=पुन दीर्घ तथा सकारको विसर्ग होनेसे वृक्षा' होता है ३ एक विभक्तिमें समान आकारवाले जितने शब्द आते है उनमेंसे एक शब्द शेष रहता है और सबका लोप होता है उसीसे अन्य अर्थका बोध होता है इसीको एकशेष कहते हैं. ४ एकशेष तथा स्वाभाविक द्वित्व बहुत्वरूप अर्थका कथन इन दोनों पक्षोंमें ५ एकको शेष रखकर बाकी सब लोप दशाको प्राप्त शब्द, **(यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी)** जो शब्द शेष रहता है वह

यद्यपि द्वितीयपक्षे एकस्यैव वृक्षपदस्यानेकवृक्षबोधकत्वं प्राप्तम् । तथाप्यनेकधर्मावच्छिन्नार्थबोधकत्वमेकपदस्य नास्तीति नियमः । एवं च वृक्षा इति बहुवचनान्तेनापि वृक्षपदेन वृक्षरूपैकधर्मावच्छिन्नस्यैव बोधो नान्यधर्मावच्छिन्नस्य । तथा चास्त्यादिपदेनाप्यस्तित्वादिरूपैकधर्मावच्छिन्नस्य बोधः सम्भवति, न तु नास्तित्वादिधर्मान्तरावच्छिन्नस्येति ॥

यद्यपि द्वितीय पक्षमें अर्थात् जैनेन्द्रके अनुसार द्विवचनान्त बहुवचनान्त वृक्षादि शब्द ही स्वभावसे द्वित्व और बहुत्व संख्या सहित वृक्ष आदिके बोधक है यह वार्ता प्राप्त है तथापि अनेक धर्म्मसे अवच्छिन्न अर्थ बोधकता एक पदको नही है, इस रीतिसे 'वृक्षौ' तथा 'वृक्षा' इत्यादि द्विवचनान्त तथा बहुवचनान्त वृक्षपदसे वृक्षत्वरूप जो एक धर्म्म उस धर्म्मसे अवच्छिन्न एक वृक्षरूपका ही भान होता है न कि किसी अन्य धर्म्मसे अवच्छिन्न पदार्थका 'इसी प्रकारसे' अस्ति आदि पदसे भी अस्तित्वरूप एक धर्म्मसे अवच्छिन्न पदार्थका ही एक कालमें ज्ञान संभव है न कि नास्तित्व आदि अन्य धर्म्मसे अवच्छिन्न पदार्थका ।

ननु—वृक्षा इति प्रत्ययवती प्रकृतिः पदम्, "सुप्तिङन्तं पदम्" इति वचनात् । तथा च वृक्षा इति बहुवचनान्तेन बहुत्ववृक्षत्वरूपानेकधर्मावच्छिन्नस्य बोधादेकपदस्यानेकधर्मावच्छिन्नबोधकत्वं नास्तीति नियमस्य भंगप्रसंग । तदुक्तम्—" अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या ।" इति ।

प्रश्न—'वृक्षा' यहांपर 'जस्' प्रत्यय सहित जो प्रकृति वृक्ष है उसको पद कहते है, सुबन्त तथा तिङन्तकी पद संज्ञा होती है, ऐसा जैनेन्द्र तथा पाणिनि ऋषिका भी वचन है, तब "वृक्षा" इस बहुवचनान्त पदसे बहुत्व तथा वृक्षत्वरूप जो अनेक धर्म्म, उस धर्म्मसे अवच्छिन्न वृक्ष अर्थका ज्ञान होनेसे एक पदको अनेक धर्म्म सहित अर्थ बोधकता नहीं है इस नियमका भंग प्राप्त हुआ

ऐसा अन्यत्र कहा भी है,—

एक तथा अनेक अर्थ भी पदका वाच्य होता है जैसे "वृक्षाः" यहां प्रत्यय सहित वृक्षरूप प्रकृतिसे बहुत संख्या युक्त वृक्षरूप अर्थ ।"

इति चेत्सत्यम्,—एकपदस्य प्रधानतयाऽनेकधर्मावच्छिन्नबोधकत्वं नास्तीति नियमस्योक्तत्वात् । प्रकृते च प्रथमतो वृक्षशब्दो वृक्षत्वरूपजात्यवच्छिन्नं द्रव्यं बोधयति । ततो लिंग संख्या चेति शाब्दबोधः क्रमेणैव जायते ।

लोप हुये शब्दोंके अर्थको कहता है । ऐसा एकशेष माननेवाले वैयाकरणोंका सिद्धान्त है ६ जो नाम अथवा धातुके आगे लगाया जाता है जैसे सु औ जस् ति त आदि. ७ जिसके आगे प्रत्यय आते है जैसे वृक्ष भू आदि मूल भाग ८ सम्बन्ध

१ वृक्षको अन्य पदार्थसे पृथक् करनेवाले वृक्षत्व धर्म्मसहित यही अर्थ जहां २ अवच्छिन्न शब्द आवे वा आया हो सर्वत्र समझ लेना २ नामकी प्रत्यय सु औ जस् आदिसे सुप् तक । जिनके अन्तमें सुप् वह सुबन्त कहाता है ३ ति, तस अन्ति आदिसे यहि वहिङ तक धातुकी प्रत्यय जिसके अन्तमे हो वह तिङन्त कहाता है ४ सुप्तिङन्तं पदम् ।१।४।१४। पाणिनीयके सूत्रसे पदसंज्ञा होती है

यदि ऐसी शंका करो तो यथार्थ है, परन्तु एक पद प्रधानतासे एक ही कालमें अनेक धर्म्मसे अवच्छिन्न पदार्थका बोधक नहीं होता, ऐसा नियम हमने कहा है, तो इस प्रकृत प्रसंगमें देखिये कि प्रथम वृक्ष शब्द एक वृक्षत्वरूप जातिसे वा वृक्षत्वरूप एक धर्म्मसे अवच्छिन्न वृक्षरूप द्रव्यका ज्ञान कराता है, पश्चात् लिंग और सख्याका इस प्रकार शाब्द बोध अर्थात् शब्द जन्य ज्ञान क्रमसे ही होता है, वृक्षत्व धर्म्म युक्त वृक्ष पुलिंग तथा बहुत संख्या युक्त है ऐसा अर्थ "वृक्षा" इस पदसे होता है।

तदुक्तम्–

यह विषय अन्यत्र भी कहा है—

"स्वार्थमभिधाय शब्दो निरपेक्षो द्रव्यमाह समवेतम्। समवेतस्य तु वचने लिंगं सख्या विभक्तियुक्तस्सम्।" इति।

शब्द प्रथम जाति वा धर्म्मरूप अर्थको अर्थात् वृक्ष शब्द वृक्षत्व जीव शब्द जीवत्व घट शब्द घटत्वरूप अर्थको कहके, लिंग सख्या आदिसे निरपेक्ष होके उस जीवत्व वृक्षत्व तथा घटत्व धर्म्मसे युक्त द्रव्यरूप अर्थको कहता है, और पुन: उन २ वृक्षत्व आदि धर्म्मोंसे समवेत अर्थात् सहित पदार्थका कहना होता है तब विभक्तिसे युक्त होके पुलिंग आदि लिंग तथा एकत्व द्वित्व तथा बहुत्वरूप सख्यारूप अर्थको कहता है।

एवं च प्रधानभावेन वृक्षत्वावच्छिन्नस्य प्रतीतिर्गुणभावेन बहुत्वसख्याया इति न कश्चिद्दोष।

इस प्रकारका सिद्धान्त होनेसे 'वृक्षा' इत्यादि पदसे वृक्षत्व धर्म्मसे अवच्छिन्न पदार्थका बोध तो प्रधानतासे होता है और लिग तथा बहुत्व सख्याका गौणतासे, इसलिये एक पद एक कालमें प्रधानतासे एक ही धर्म्माऽवच्छिन्न पदार्थका ज्ञान सर्वत्र कराता है, इसलिये सिद्धान्त वा नियममें कोई दोष नहीं है'

अथैकस्य पदस्य वाक्यस्य वा प्रधानभावेनानेकधर्मावच्छिन्नवस्तुबोधकत्वानंगीकारे प्रधानभावेनाशेषधर्मात्मकस्य वस्तुन प्रकाशकं प्रमाणवाक्य कथमुपपद्यते? इति चेत्–कालादिभिरभेदवृत्त्याऽभेदोपचारेण वा द्रव्यपर्यायनयार्पितेन सकलस्य वस्तुन. कथनात्। इति निरूपित प्राक्।

यदि एक पद अथवा एक वाक्यसे प्रधानतासे अनेक धर्म्मसे अवच्छिन्न वस्तुकी बोधकता इस पक्षको नही स्वीकार करते हो, अर्थात् एक पद वाक्य एक ही धर्म्मसे अवच्छिन्न वस्तुका बोध कराता है, यही नियम है तब प्रमाण वाक्य अशेष सम्पूर्ण अथवा अनेक धर्म्मस्वरूप वस्तुका प्रकाशक कैसे हो सकता है। यदि ऐसा कहो तो— काल, आत्मस्वरूप तथा अर्थ आदिके द्वारा द्रव्यार्थ नयकी अपेक्षासे अभेद वृत्तिसे, और पर्य्यायार्थक नयकी अपेक्षासे प्रमाण वाक्यसे सम्पूर्ण वस्तुका कथन होता है यह विषय पूर्व प्रसगमें पूर्ण रीतिसे निरूपित कर चुके है

ननु 'सत्त्वासत्त्वे' इति द्वन्द्वसमासपदं सत्त्वासत्त्वयोः प्राधान्येन बोधकम्। "उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः" इति वचनात्, एवं च कथमवाच्यत्वं सदसत्त्वात्मकवस्तुन ? इतिचेन्न-द्वन्द्वस्यापि क्रमेणैवार्थद्वयप्रत्यायनसमर्थत्वेन गुणप्रधानभावस्य तत्रापि सत्त्वात्। अत एव-"अभ्यर्हितं पूर्वम्" इति प्रधानभूतार्थस्य पूर्वनिपातानुशासनं सगच्छते। अस्तु वा द्वन्द्व उभयस्यापि प्राधान्येन बोध'। अथापि प्रधानभावेनास्तित्वनास्तित्वोभयावच्छिन्नस्य धर्मिण प्रतिपादकशब्दाभावादवाच्यत्वमक्षतम्।

प्रश्न —"सत्त्वासत्त्वे" यह द्वन्द्वे समाससे सिद्ध पद प्रधानतासे सत्त्व तथा असत्त्वरूप अर्थका बोधक है। क्योंकि द्वन्द्व समासमे दोनों पदे अथवा अधिक पद प्रधान होते है ऐसा वचन है इस प्रकारसे सत्त्व तथा असत्त्व धर्म्म सहित वस्तुकी अवाच्यता कैसे होसकती है अर्थात् जब व्याकरण शास्त्रसे द्वन्द्व समास सिद्ध पद दो अर्थोको प्रधानसे कह सकता है तब 'स्यात् अवक्तव्य एव' यह चतुर्थ भङ्ग नही बन सकता? ऐसी शका नहीं कर सकते क्योंकि द्वन्द्व समासको भी क्रमसे ही दो अथवा दोसे अधिक अर्थोंके बोध करानेमें सामर्थ्य है, मुख्यता तथा गौणताका भाव द्वन्द्व समासमें भी विवक्षित है। "इसी हेतुसे "अर्भ्यर्हितम् पूर्वम्" पूजित अथवा श्रेष्ठ वा प्रधान जो होता है वह द्वन्द्व समासमें सबसे पूर्व रक्खा जाता है इस रीतिसे ही प्रधानभूत जो अर्थ है उसके पूर्व नियत करनेकी आज्ञा शास्त्रकारकी सगत होती है, यदि किसीकी एककी इस समासमें प्रधानता नहीं होती तो प्रधानके पूर्व नियम रखनेका नियम व्याकरणमें कैसे किया जाता, अथवा द्वन्द्व समासमें उभय पदार्थकी प्रधानताहीसे बोध होता है, ऐसा माननेसे भी हमारी कोई हानि नही है। क्योंकि प्रधानतासे अस्तित्व तथा नास्तित्व इन उभये धर्म्म सहित पदार्थका प्रतिपादक धर्म्मी कोई शब्द नही है इसलिये अवाच्यस्वरूप पूर्ण रीतिसे है अर्थात् 'स्यात अवक्तव्य' इस हमारे चतुर्थ भङ्गकी सिद्धिमें कोई क्षति नही है,

न च- 'सदसत्त्वविशिष्ट वस्तु' इत्यनेन द्वन्द्वगर्भिततत्पुरुषेण सदसत्त्वविशिष्टपदेन तदुभयधर्मावच्छिन्नस्य वस्तुनो बोधसम्भवादिति वाच्यं, तत्र सदसत्त्ववैशिष्ट्यस्यैव प्रधानतया तयोरप्रधानत्वात्। "उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुष' इति वचनात। तस्मात्सकलवाचकरहितत्वात्स्यादवक्तव्यो घट इति सिद्धम॥

सत्त्व असत्त्व विशिष्ट वस्तु, द्वन्द्व समासको गर्भमें रखनेवाले तत्पुरुष समाससे सदसत्त्व

---

१ सत्त्व और असत्त्व, 'सत्त्व च असत्त्व च' इस प्रकार द्वन्द्व समास करनेसे 'सत्त्वासत्त्वे' यह पद बनता है २ उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्व, इस वाक्यमें उभय पद अनेकका भी उपलक्षण है क्योंकि द्वन्द्व समास अनेक पदोंका भी होता है ३ जहा दो ही पदका द्वन्द्व हो वहां दोको प्रधानता, अनेकमे सबको प्रधानता रहती है ४ यह बचन (अल्पाच्तरम्) २।२।३४। पाणिनीयाष्टके अल्पाचवाले शब्दका पूर्व निपात होना है इसका वार्तिक है अभ्यर्हितके पूर्व निपातका उदाहरण तापसपर्वतौ है ५ अभ्यर्हितके अर्थ प्रधान वा मुख्य मानके यह कथन किया है ६ अस्तित्व नास्तित्व दोनों ७ कहनेवाला, वाचक ८ सत्व असत्व दोनों धर्म्म सहित पदार्थ

विशिष्ट इस पदसे सत्त्व तथा असत्त्व, इन दोनों धर्म्मोंसे सहित वस्तुके बोध संभव है, इस रीतिसे अक्तव्यत्व भंग नही बन सकता। ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि सदसत्व विशिष्ट इस पदमें सत्त्व और असत्त्वके वैशिष्ट्यकी ही प्रधानता है, अर्थात् सत्त्व और असत्त्वसे सहित जो वस्तु है, उसीका प्रधानतासे बोध होता है, न कि सत्त्व और असत्व इन दोनों धर्म्मोंका, क्योंकि वे अप्रधान है, तत्पुरुष समासमें उत्तर पदार्थ प्रधान रहता है॥ ऐसा व्याकरण शास्त्रका बचन है। इस कारण सदसत्त्वका सर्वथा वाचक पद न होनेसे "स्यात् अक्तव्यश्च घट" कथचित् घट अवाच्य है, यह भङ्ग निर्विवाद सिद्ध है,

तच्च न सर्वथैवावक्तव्यम्, अवक्तव्यशब्देनास्य वक्तव्यत्वात्। अतस्स्यादवक्तव्यो घट इति चतुर्थभग। इति केचिद्व्याचक्षते। तत्रेद चिन्त्यम, अवक्तव्यशब्दस्याभिधेयं किमिति।

वह अवक्तव्यरूप अर्थ भी सर्वथा ही अवाच्य नहीं है क्योंकि अवक्तव्य शब्दसे वह कहा जाता है, इसी कारणसे "स्याद् अवक्तव्य घट" यह चतुर्थ भङ्ग बनता है। ऐसा कोई कहते है, अब इस कथनके विषयमे यह विचारना चाहिये कि अवक्तव्य शब्दका वाच्यार्थ क्या है, अर्थात् इस अवक्तव्य शब्दसे क्या पदार्थ कहा जाता है।

न च-प्रधानभूतसदसत्त्वरूपधर्मावच्छिन्न वस्तु अवक्तव्यशब्देनाभिधीयत इति वाच्यम, तथा सति तस्य सकलवाचकरहितत्वक्षते, अवक्तव्यशब्दस्य तद्वाचकस्य सत्त्वात्, एकपदस्य प्रधानभूतानेकधर्मावच्छिन्नवस्तुबोधकत्व नास्तीति नियमस्य भगप्रसगाच्च।

कदाचित् यह कहो कि प्रधानता दशाको प्राप्त सत्त्व असत्त्व जो धर्म्म है। उन धर्म्मों करके सहित पदार्थ अवक्तव्य शब्दसे कहा जाता है, सो यह नही कह सकते, यदि ऐसा स्वीकार करोगे तो प्रधानभूत सदसत्त्वका एक कालमें कोई वाचक नहीं है किन्तु वह सकल वाचक शब्दसे रहित है, इसी नियमका भङ्ग होगा क्योंकि अवक्तव्य शब्द उसका वाचक विद्यमान है, और एक पद एक ही कालमें प्रधानभूत अनेक धर्म्म सहित वस्तुका बोधक नही है, इस नियमका भी भग होगा,

किञ्च-यथाऽवक्तव्यमिति पद साकेतिक तादृशोभयधर्मावच्छिन्नस्य वाचक, तथा साङ्केतिकमन्यदपि तद्वाचक कुतो न भवति?

और दूसरी एक बात यह भी है कि जैसे सकेत[१] सिद्ध होनेसे अवक्तव्य यह शब्द सत्त्व असत्त्व उभय धर्म्मोसे अवच्छिन्न वस्तुका वाचक है ऐसे ही सकेतसे सिद्ध अन्य शब्द भी इस अर्थका वाचक क्यो नही होता?

ननु-अन्यस्य सांकेतिकपदस्य क्रमेणैतादृशधर्मावच्छिन्नवस्तुबोधकत्वमिति चेत्, अवक्तव्यपदस्यापि युगपत्तद्वाचकत्वं माभूत। यथा-सांकेतिकपदान्तरेण सत्त्वासत्त्वादिधर्मावच्छिन्न वस्तु क्रमेण प्रतीयते, तथाऽवक्तव्यपदेनापि, उभयोर्विशेषाभावात्। अवक्तव्यपदेन हि

१ सत्त्व असत्त्व इस उभय धर्म्म सहित पदार्थका कहनेवाला शब्द २ इस शब्दसे अमुक अर्थका ज्ञान हो ऐसे सकेतसे सिद्ध शब्द

वक्तव्यत्वाभावरूपधर्मावच्छिन्नं वस्तु प्रतीयते, न तु सत्त्वासत्त्वादिरूपानेकधर्मावच्छिन्नं वस्त्विति सर्वानुभवसाक्षिकमेतत् ।

यदि ऐसा कहो कि अन्य जो संकेत सिद्ध पद है उसको क्रमसे ही सत्त्व असत्त्व धर्म्मसे अवच्छिन्न वस्तुकी बोधकता है, तो अन्य पदके समान अवक्तव्य इस पदको भी एक कालमें ही सत्त्व तथा असत्त्व धर्म्मसे अवच्छिन्न वस्तुकी बोधकता नहीं हो सकती, जैसे अन्य सांकेतिक पदसे सत्त्व तथा असत्त्व धर्म्म सहित पदार्थका ज्ञान क्रमसे ही होता है, ऐसे ही अवक्तव्य इस पदसे भी क्रमसे उसका ज्ञान होता है। क्योंकि जब दोनो संकेत सिद्ध है तब एकमें कोई विशेषता नही है, किन्तु अवक्तव्य इस पदसे वक्तव्यत्वका अभावरूप जो धर्म्म है उस वक्तव्यत्वाऽभावरूप धर्म्म सहित पदार्थ भासता है, न कि सत्त्व असत्त्व इन उभय धर्म्म सहित पदार्थ। इस विषयमें सब विद्वानोंका अनुभव ही साक्षी है।

अथैवम्—

अव इस विषयमें यदि यह कहो—

" उक्तिश्चावाच्यतैकान्तेनावाच्यमिति युज्यते। "

"अवाच्यताका जो कथन है वह एकान्तरूपसे अकथनीय है ऐसा माननेसे अवाच्यता युक्त न होगी ॥

इति स्वामिसमन्तभद्राचार्यवचनं कथं संघटते ? सत्त्वासत्त्वविशिष्टस्य वस्तुनस्सर्वथाऽवाच्यत्वे तस्य वाच्यशब्देनापि वाच्यत्वं न स्यादिति तत्र प्रतिपादनात्, इति चेन्न, तदर्थापरिज्ञानात्। अयं खलु तदर्थः, सत्त्वाद्येकैकधर्ममुखेन वाच्यमेव वस्तु युगपत्प्रधानभूतसत्त्वासत्त्वोभयधर्मावच्छिन्नत्वेनावाच्यम्, तादृशवस्तुनः सत्त्वाद्येकधर्ममुखेनाप्यवाच्यत्वे वाच्यत्वाभावधर्ममुखेनावाच्यशब्देनापि वाच्यत्वं न स्यादिति। एतादृशव्याख्यामपहाय सत्त्वासत्त्वोभयरूपेणावाच्यं वस्तु तादृशरूपेणैवावाच्यशब्देन वाच्यं भवतीति व्याख्याने येन रूपेणावाच्यं वस्तु तेनैव रूपेण वाच्यं प्राप्तमिति येन रूपेण सत्त्वं तेनैव रूपेणाऽसत्त्वमप्यंगीक्रियताम्। तथा च—

यह श्रीस्वामी समन्तभद्राचार्य्यका कथन कैसे संगत होगा, क्योंकि आचार्य्यके इस वचन कहनेका तात्पर्य्य यही है, कि यदि सत्त्व असत्त्व धर्म्म सहित वस्तुको सर्वथा आवाच्य[3] मानोगे तो वह 'अवक्तव्य इस पदसे भी नही कही जा सकती, क्योंकि जब सर्वथा अकथनीय है तब किसी पदसे भी नही कही जासकती ? ऐसी शंका भी नहीं कर सकते, क्योंकि तुमने स्वामी समन्तभद्राचार्य्यजीके वचनका अर्थ नहीं समझा, उस वचनका निश्चयरूपसे अर्थ यह है कि सत्त्व आदि धर्म्मोंमेसे किसी एक धर्म्मके द्वारा जो पदार्थ वाच्य है अर्थात् कहनेके योग्य है, वही पदार्थ प्रधानभूत सत्त्व असत्त्व

१ पदार्थके स्वरूपको जनाने अथवा कहनेके लिये शब्दमे शक्ति अथवा वाचकता २ संकेतसे सिद्ध. ३ जो कहा नहीं जाय.

इस उभय धर्म्म सहित रूपसे अवाच्य है, यदि सत्त्व असत्त्व धर्म्म सहित पदार्थको सत्त्व आदि एक धर्म्मके द्वारा भी अवाच्य मानो, तो वाच्यत्वका अभावरूप धर्म्म है। उस अभावरूप धर्म्मके द्वारा वस्तुको कहनेवाले 'अवाच्य' इस शब्दसे वह वस्तु वाच्य न होगा, बस यही अभिप्राय आचार्य्यके वचनका है, इस सत्यार्थ व्याख्यानको त्याग कर सत्त्व असत्त्व इस उभय धर्म्मसे अवाच्य जो पदार्थ है वही सत्त्व असत्त्व इस उभय धर्म्म-सहित वस्तुको कहनेवाले अवाच्य शब्दसे भी वाच्य होता है, यदि ऐसा व्याख्यान करोगे तो जिस रूपसे पदार्थ अवाच्य है उसी रूपसे वह वाच्य भी होगया, यह वार्ता सिद्ध होगई, तब तो तुम जिस रूपसे वस्तुका सत्त्व है उसी रूपसे उसी वस्तुका असत्त्व भी स्वीकार करो। यह बात प्राप्त हुई। और इस प्रकार माननेसे—

"विरोधान्नोभयैकान्यं स्याद्वादन्यायवेदिनाम।" *

विरोध होनेसे सत्त्व असत्त्व इन उभय धर्म्ममेंसे किसी एक धर्म्मरूपसे अवाच्यत्व स्याद्वाद न्यायके मर्मवेत्ता जन नही स्वीकार करते।

इति तदीयवचनमेव विरुद्ध्यते।

इस स्वामी समन्तभद्राचार्य्यजीके वचनका ही विरोध तुमको प्राप्त होगा।

सिद्धान्तविदस्तु-अवक्तव्य एव घट इत्युक्ते सर्वथा घटस्यावक्तव्यत्व स्यात्, तथा चास्तित्वादिधर्ममुखेनापि घटस्य प्रथमादिभगैरभिधान न स्यात्, अत स्यादिति निपातप्रयोग। तथा च सत्त्वादिरूपेण वक्तव्य एव घटो युगपत्प्रधानभूतसत्त्वासत्त्वोभयरूपेणावक्तव्य इति चतुर्थभगार्थनिष्कर्ष इति प्राहु ॥

सिद्धान्तवेत्ता जन तो—"अवक्तव्य एव घट" घट अवक्तव्य है। ऐसा कहनेसे घटको अवक्तव्यता सर्वथा प्राप्त होगी, तो इस रीतिमे अस्तित्व आदि धर्म्मके द्वारा प्रथम आदि भङ्गसे भी घटका कथन नही होसकेगा, इसलिये अवक्तव्य शब्दके पूर्व स्यात् इस निपातका प्रयोग किया है। इस प्रकार इस निपातके लगानेसे सत्त्व आदिरूपसे तो घट वक्तव्य है किन्तु एक कालमे ही प्रधानभूत सत्त्व असत्त्व इन उभय रूपसे अवक्तव्य है यह इस "स्यादवक्तव्य एव घट" चतुर्थ भङ्गके अर्थका साराश है ऐसा कहते है।

व्यस्तसमस्तद्रव्यपर्यायावाश्रित्य चरमभगत्रयमुपपादनीयम। तथा हि व्यस्त द्रव्यं समस्तौ सहार्पितौ द्रव्यपर्यायावाश्रित्य स्यादस्ति चावक्तव्य एव घट इति पचमभंग। घटादिरूपैकधर्मिविशेष्यकसत्त्वविशिष्टावक्तव्यत्वप्रकारकबोधजनकवाक्यत्व तल्लक्षणम्। तत्र द्रव्यार्पणादस्तित्वस्य युगपद्द्रव्यपर्यायार्पणादवक्तव्यत्वस्य च विवक्षितत्वात्।

---

१ 'स्यादस्ति घट' इस पहिले भगसे भी घट नहीं कहा जायगा, क्योंकि यदि सर्वथा अवाच्य है तो उसका कथन किसी धर्म्मसे नही हो सकता २ स्यात् यह निपात अनेकान्त अर्थका वाचक या द्योतक है अर्थात् किसी अपेक्षासे घट अवक्तव्य है न कि सर्वथा

पृथक् तथा मिलित द्रव्य और पर्य्यायका अवलम्बन करके अन्तिम तीनें भङ्गोंकी व्याख्या करनी चाहिये, तथा हि जैसे पृथक्भूत द्रव्य और मिलित द्रव्य पर्य्याय इनका आश्रय करके "स्यादस्ति च अवक्तव्यश्च घट." इस पचम भङ्गकी प्रवृत्ति होती है। घट आदिरूप धर्म्मी विशेष्यक और सत्त्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणवाले ज्ञानका जनक वाक्यत्व, यह इस भङ्गका लक्षण है, अर्थात् जिस ज्ञानमें घट आदि धर्मी पदार्थ विशेष्य हो, और सत्त्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणीभूत हो ऐसे ज्ञानको उत्पन्न करानेवाला वाक्यत्व, यही इस पचम भङ्गका लक्षण है, क्योकि इस भगमे द्रव्यत्वकी योजनासे तो अस्तित्व और एक कालमे ही द्रव्य पर्य्याय दोनोको मिलाके योजना करनेसे अवक्तव्यत्व-रूप अविवक्षित है। तात्पर्य्य यह है कि द्रव्यरूपसे तो घटका सत्त्व अर्थात् द्रव्यरूपसे घट है और एक कालमे ही प्रधानभूत द्रव्य पर्य्यायरूपमे नहीं है।

तथा व्यस्त पर्यायं समस्तौ द्रव्यपर्यायौ चाश्रित्य स्यान्नास्ति चावक्तव्य एव घट इति षष्ठ। तल्लक्षण च घटादिरूपैकधर्मिविशेष्यकनास्तित्वविशिष्टावक्तव्यत्वप्रकारकबोधजनकवाक्यत्वम्।

और ऐसे ही पृथक्भूत पर्य्याय और मिलित द्रव्यपर्य्यायका आश्रय करके "स्यान्नास्ति च अवक्तव्यश्च घट" किसी अपेक्षासे घट नहीं है तथा अवक्तव्य है, इस षष्ठ भङ्गकी प्रवृत्ति होती है, घट आदिरूप एक पदार्थ विशेष्यक और असत्त्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणवाले ज्ञानका जनक वाक्यत्व, यह इसका लक्षण है अर्थात् जिस ज्ञानमें घट आदि पदार्थ विशेष्य हो और असत्त्व अथवा नास्तित्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणी-भूत हो ऐसे ज्ञानको उत्पन्न करनेवाला वाक्य, यही इस षष्ठ भङ्गका लक्षण है, पृथक्-भूत पर्य्यायकी योजनासे नास्तित्व और मिलित द्रव्य पर्य्याय दोनोकी योजनामे अवक्तव्यत्व इस षष्ठ भगमे विवक्षित है। पर्य्यायकी अपेक्षासे नास्तित्व तथा प्रधानभूत द्रव्य पर्य्याय उभयकी अपेक्षासे अवक्तव्यत्वका आश्रय घट यह इस भगका अर्थ है।

एवं व्यस्तौ क्रमार्पितौ समस्तौ सहार्पितौ च द्रव्यपर्यायावाश्रित्य स्यादस्ति नास्ति चा-वक्तव्य एव घट इति सप्तमभग। घटादिरूपैकवस्तुविशेष्यकसत्त्वासत्त्वविशिष्टाववक्तव्यत्व-प्रकारकबोधजनकवाक्यत्व तल्लक्षणम। इति सक्षेप॥

इसी प्रकार अलग २ क्रमसे योजित, तथा मिलेहुये (साथ योजित) द्रव्य तथा पर्य्यायका आश्रय करके "स्यात् अस्ति नास्ति च अवक्तव्यश्च घट" किसी अपेक्षासे सत्त्व असत्त्व सहित अवक्तव्यत्वका आश्रय घट, इस सप्तम भगकी प्रवृत्ति होती है, घट आदिरूप एक पदार्थ विशेष्यक और सत्त्व असत्त्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषणवाले ज्ञानका जनक

---

१ स्यादस्ति च अवक्तव्यश्च घट, स्यान्नास्ति च अवक्तव्यश्च घट, स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यश्च घट, द्रव्यको पृथक् मानके द्रव्यपर्यायको मिलाके पचम भगकी, पर्य्यायको पृथक, द्रव्यपर्य्यायको मिलाके षष्ठकी, योजित द्रव्यपर्य्यायको मानके सप्तम भङ्गकी प्रवृत्ति होती है और पृथकभूत क्रमसे योजित द्रव्यपर्य्यायको मिलाके षष्ठकी। यही सप्तम तथा षष्ठमे भेद है

वाक्य, यह इसका लक्षण है अर्थात् जिस ज्ञानमें घट आदि कोई एक पदार्थ तो विशेष्य हो, और सत्त्व असत्त्व सहित अवक्तव्यत्व विशेषण हो ऐसा जो ज्ञान उस ज्ञानका उत्पन्न करानेवाला वाक्य यह इस सप्तम भंगका लक्षण है इस कारणसे अलग २ क्रमसे योजित द्रव्य पर्य्यायकी अपेक्षासे सत्त्व असत्त्व सहित मिलित तथा साथ योजित द्रव्य-पर्य्यायकी अपेक्षासे अवक्तव्यत्वका आश्रय घट यह इस भंगका अर्थ है। इस प्रकार संक्षेपसे सप्त भंगोंका निरूपण समाप्त हुआ।

अत्र–द्रव्यमेव तत्त्वं, अतस्स्यादस्तीति भंग एक एवेति सांख्यमतमयुक्तम्;–पर्यायस्यापि प्रतीतिसिद्धत्वात्। तथा–पर्याय एव तत्त्वम्, अतस्स्यान्नास्तीति भंग एवेति सौगतमतमपि युक्तिदुर्गतम्, द्रव्यस्यापि प्रतीतिसिद्धत्वात्। एवमवक्तव्यमेव वस्तुतत्वमित्यवक्तव्यत्वैकान्तोपि स्ववचनपराहत, सदा मौनव्रतिकोहमितिवत्। एवमेवान्येषामेकान्तानां प्रतीतिपराहतत्वादनेकान्तवाद एवावतिष्ठते।

अत्र इस विषयमे द्रव्य ही तत्त्व है और पर्य्याय नही है इसलिये "स्यादस्ति" पदार्थ है यह एक ही भंग सत्य है, ऐसा सांख्य मत है वह अयुक्त है क्योंकि घट कुशूल आदि पर्य्याय भी अनुभव सिद्ध है, तथा पर्य्याय ही तत्त्व है अर्थात् हरएक पदार्थ क्षण २ मे बदलता रहता है, इसलिये क्षणिक पर्य्याय ही तत्त्व है कोई मुख्य द्रव्य नित्य नही है अत एव "स्यान्नास्ति" नित्य कोई द्रव्य नही है, यह एक ही भंग युक्तिसे युक्त है, यह बौद्धका[1] मत भी युक्ति शून्य है क्योकि घट आदि पर्य्यायोमें मृत्तिकाका रूप द्रव्य कटक कुण्डल आदिमें सुवर्णरूप अनुगतरूप द्रव्य भी अनुभव सिद्ध है। इसी प्रकार जो यह कहते है कि सर्वथा अवक्तव्यरूप ही वस्तु स्वरूप है उनको निज वचनता ही विरोध है क्योकि अवक्तव्य इस शब्दसे वे वस्तुको कहते है तो सर्वथा अवक्तव्यता कहा रही। जैसे कोई कहे कि मै सदा मौनव्रत धारण करता हू, यदि सदा मौन है तो सदा मै मौन हू यह शब्द भी कैसे बोल सकता है। इसी रीतिसे अन्य भी सर्वथा एकान्त-वादियोंका कथन अनुभवविरुद्ध होनेसे अनेकान्त वाद ही युक्ति तथा अनुभवरूप कसौटी पर ठहरता है, अत वही निर्विवादरूपसे स्थित है।

ननु च अनेकान्तेपि विधिप्रतिषेधरूपा सप्तभंगी प्रवर्तते वा न वा? यदि प्रवर्तते–तदाऽनेकान्तस्य निषेधकल्पनायामेकान्त एव प्राप्त इति तत्पक्षोक्तदोषानुषंग। अनवस्था च। तादृशैकान्तस्याप्यपरानेकान्तकल्पनया विधिप्रतिषेधयोर्वक्तव्यत्वात्। यदि सा न प्रवर्तते–तदा सर्व वस्तुजातं सप्तभंगी संवलितमिति सिद्धान्तव्याघात। इति चेन्न,–प्रमाणनयार्पणाभेदात्तत्रापि तदुपपत्ते.। तथा हि–एकान्तो द्विविध -सम्यगेकान्तो मिथ्यैकान्त इति। अनेकान्तोपि द्विविध, सम्यगनेकान्तो मिथ्यानेकान्त इति। तत्र सम्यगेकान्तस्तावत्प्रमाणविषयीभूतानेक-

[1] बौद्धका यह मत है कि वह कोई पदार्थ नित्य नहीं मानता किन्तु सब क्षणिक बुद्धिगत घट आदि पर्य्याय भासते है। और पदार्थ है वह क्षणिक अनित्य है जैसे घट क्योकि सर्व सत्त्व है जैसे घट नाशके प्रति किसीकी अपेक्षा नहीं रखता अतः क्षणिक है

धर्मात्मकवस्तुनिष्ठैकधर्मगोचरो धर्मान्तराप्रतिषेधक । मिथ्यैकान्तस्त्वेकधर्ममात्रावधारणेनान्याशेषधर्मनिराकरणप्रवण: । एवमेकत्रवस्तुन्यस्तित्वनास्तित्वादिनानाधर्मनिरूपणप्रवण: प्रत्यक्षानुमानागमाविरुद्धस्सम्यगनेकान्त: । प्रत्यक्षादिविरुद्धानेकधर्मपरिकल्पन मिथ्यानेकान्त. । इति । तत्र सम्यगेकान्तो नय', मिथ्यैकान्तो नयाभास. । सम्यगनेकान्त प्रमाणं, मिथ्यानेकान्त' प्रमाणाभास । इति व्यपदिश्यते ।

प्रश्न'—अनेकान्त इस शब्द तथा इसके अर्थमें भी विधि तथा निषेधरूप "स्यादस्ति स्यान्नास्ति" इत्यादि सप्तभगी प्रवृत्त होती है कि नही? यदि यह कहो कि प्रवृत्त होती है तब तो अनेकान्तके निषेधकी कल्पनासे एकान्त ही प्राप्त हुआ। क्योंकि जैसे एकान्तका निषेध होनेसे अनेकान्त होता है ऐसे ही अनेकान्त जो नही अर्थात् एकान्तरूपता प्राप्त हुई, तब एकान्त पक्षमें जो दोष आपने दिया है वह आपको भी प्राप्त हुआ। और अनवस्थारूप दोष भी आवेगा, क्योकि इस प्रकार एकान्तकी अन्य अनेकान्तकी कल्पना करनेसे विधि तथा निषेध बराबर कहते हुये चले जाओ, जितने अनेकान्त कहोगे वहा सब जगह विधि प्रतिषेधकी कल्पनासे कही विश्राम न मिलेगा, यह अनवस्था दोष तथा एकान्त पक्षके दोष भी तुमारे पक्षमें प्राप्त हुये। और यदि यह कहो कि अनेकान्तमे विधिनिषेध आदिरूप सप्तभगी नही प्रवृत्त होती तो सम्पूर्ण वस्तुमात्र सप्तभंगी न्यायसे व्याप्त है, इस सिद्धान्तका व्याघात हुआ? ऐसी शङ्का नहीं कर सकते क्योकि प्रमाण तथा नयके भेदकी योजनासे अनेकान्तमे भी विधि निषेध कल्पनासे सप्तभङ्गी न्यायकी उपपत्ति है । जैसे यह सिद्ध होता है वह दर्शाते है,—एकान्त दो प्रकारका है, एक सम्यक् एकान्त और दूसरा मिथ्या एकान्त । ऐसे ही अनेकान्त भी दो प्रकारका है एक सम्यक् अनेकान्त और दूसरा मिथ्या अनेकान्त । उनमेंसे सम्यक् एकान्त वह है जो प्रमाण सिद्ध अनेक धर्मस्वरूप जो वस्तु है उस वस्तुमें जो रहनेवाला धर्म है, उस धर्मको अन्य धर्मोका निषेध न करके विषय करनेवाला, अर्थात् अनेक धर्ममय पदार्थके एक किसी धर्मको कहे परन्तु अन्य धर्मोका निषेध भी जो नहीं करता है वही सम्यक् एकान्त है! और पदार्थके एक ही धर्मका निश्चय करके अन्य सपूर्ण धर्मोके निषेध करनेमें जो तत्पर है वह मिथ्या एकान्त है । इसी प्रकारके प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगम प्रमाणसे अविरुद्ध एक वस्तुमे अनेक धर्मोके निरूपण करनेमें तत्पर है वह सम्यक् अनेकान्त है । तथा प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे विरुद्ध जो एक वस्तुमें अनेक धर्मोकी कल्पना करता है वह मिथ्या अनेकान्त है । उनमें सम्यक् एकान्त तो नय हैं और मिथ्या एकान्त नयाभास है । और ऐसे ही सम्यक् अनेकान्त प्रमाण और मिथ्या अनेकान्त प्रमाणाभास है ऐसा भी कहते है ।

---

१ युक्तिपूर्वक सिद्धि, प्रमाण तथा नय इन दोनोके भेदसे अनेकान्तमे विधिनिषेधकी कल्पनारूप सप्तभङ्गी न्यायकी योजना युक्तिसे सिद्ध है २ सप्तभङ्गी न्यायकी अनेकान्तमे भी सिद्धि.

तथा च-सम्यगेकान्तसम्यगनेकान्तावाश्रित्य प्रमाणनयार्पणाभेदात्, स्यादेकान्तः, स्यादनेकान्तः, स्यादुभय, स्यादवक्तव्य', स्यादेकान्तश्चावक्तव्यश्च, स्यादनेकान्तश्चावक्तव्यश्च, स्यादेकान्तोनेकान्तश्चावक्तव्यश्चेति सप्तभंगी योज्या । तत्र नयार्पणादेकान्तो भवति, एकधर्मगोचरत्वान्नयस्य । प्रमाणादनेकान्तो भवति, अशेषधर्मनिश्चयात्मकत्वात्प्रमाणस्य । यद्यनेकान्तोऽनेकान्त एव नत्वेकान्त इति मतम् । तदा-एकान्ताभावे तत्समूहात्मकस्यानेकान्तस्याप्यभावप्रसंगः, शाखाद्यभावे वृक्षाद्यभाववत् । इत्येवं मूलभंगद्वये सिद्धे उत्तरे च भगा एवमेव योजयितव्या ॥

इसलिये सम्यक् एकान्त और सम्यक् अनेकान्तका आश्रय लेकर प्रमाण तथा नयके भेदकी योजनासे किसी अपेक्षासे एकान्त, किसी अपेक्षासे अनेकात, किसी अपेक्षासे उभय, किसी अपेक्षासे अवक्तव्य है, कथचित् एकात अवक्तव्य, कथचित् अनेकात अवक्तव्य, और कथचित् एकात अनेकात अवक्तव्य है इस रीतिसे सप्तभङ्गीकी योजना करनी चाहिये । उसमें नयकी योजनासे एकांत पक्ष सिद्ध होता है, क्योकि नय एक ही धर्मको विषय करता है । और प्रमाणको योजनासे अनेकात सिद्ध होता है, क्योंकि प्रमाण सपूर्ण धर्मोंको विषय करता है, अर्थात् प्रमाणसे वस्तुके सपूर्ण धर्मोका निश्चय होता है । और यदि अनेकांत अनेकात ही रहे किसी अपेक्षासे भी एकात नहीं है ऐसा मत है तब तो एकातके अभावसे उसके समूहभृत अनेकातका भी अभाव ही हो जायगा जैसे शाखादिकके अभावसे शाखा समूहरूप वृक्ष आदिका भी अभाव होता है ऐसे ही एकातके अभावसे एकात समूहरूप अनेकातका भी अभाव हो जायगा । इस रीतिसे मूलभूत दो भगकी सिद्धि होनेसे उत्तर भङ्गोकी योजना करनी चाहिये ।

इय च सप्तभगी नित्यत्वानित्यत्वैकत्वानेकत्वादिधर्मेष्वपि निरूपयितव्या । यथा- स्यान्नित्यो घट , स्यादनित्यो घट इति मूलभंगद्वय, घटस्य द्रव्यरूपेण नित्यत्वात्पर्यायरूपेणानित्यत्वात् ।

इस सप्तभङ्गीका निरूपण नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व तथा अनेकत्व आदि धर्मोंसे करना चाहिये । जैसे कथचित् घट नित्य है । और कथचित् घट अनित्य है, यह दो मूल भङ्ग है क्योकि घट द्रव्यरूपसे नित्य है और पर्यायरूपसे अनित्य है ।

तदुक्तम् ।

यह विषय अन्यत्र भी कहा गया है,-

" समुदेति विलयमृच्छति भावो नियमेन पर्ययनयेन ।
नोदेति नो विनश्यति द्रव्यनयालिङ्गितो नित्यम् ॥ " इति ।

"पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे नियमसे पदार्थ उत्पन्न होता है और नष्ट भी होता है. परन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे पदार्थ न उत्पन्न ही होता है. और न नष्ट ही होता है"

---

१ एकान्तके समूहरूप, जैसे शाखा समूहरूप वृक्ष है, ऐसे ही एकान्त समूह ही अनेकान्त है २ अस्ति, नास्ति, वा एकान्त, अनेकान्त ३ अस्ति नास्ति इस तृतीयभगसे लेके 'स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च' इस सप्तम भङ्गपर्यन्त पाच उत्तर भङ्ग है । मूल भङ्ग अस्ति नास्ति ये दो ही है

ननु—स्यान्नित्यो घट इत्यत्र स्याच्छब्दः कथञ्चिदर्थकः, अवच्छिन्नत्वं संसर्गः, द्रव्यरूपावच्छिन्ननित्यत्ववान् घट इति बोधश्च प्रथमवाक्यस्य युक्तः । द्वितीयवाक्ये चानित्यपदस्य नित्यभेदोऽर्थः, एव च पर्यायरूपावच्छिन्ननित्यभेदवान् घट इति बोध प्राप्नोति । स चायुक्त. । द्रव्यरूपेण नित्ये घटे नित्यभेदस्य बाधितत्वात्, भेदस्य व्याप्यवृत्तित्वात् । इति चेदुच्यते;—मूले वृक्षस्संयोगी नेत्यबाधितप्रतीत्याभेदस्याप्यव्याप्यवृत्तित्वमंगीक्रियत एव । अव्याप्यवृत्तित्वं च प्रकृते प्रतियोगिवृत्तित्वम् । संयोगिभेदस्य प्रतियोगी संयोगवान् वृक्ष., तद्वृत्तित्वं संयोगिभेदस्याक्षतम्, वृक्षे मूलावच्छेदेन सयोगिभेदस्य सत्त्वात् । तथा च घटेपि पर्यायावच्छेदेन नित्यभेदो वर्तत इति पर्यायरूपावच्छिन्ननित्यभेदवान घट इति बोधे न कापि क्षतिरिति बोध्यम् ।

प्रश्नः—'स्यान्नित्यो घट' कथचित् घट नित्य है इस वाक्यमे स्यात् शब्दका अर्थ कथंचित् है, अवच्छिन्नत्व ससर्गतारूपसे भासता है इसलिये द्रव्यरूपसे अवच्छिन्न जो नित्यत्व उस नित्यत्व युक्त घट, यह बोध प्रथम वाक्यका होना युक्त है, और द्वितीय वाक्यमें तो अनित्य पदका नित्य भेद अर्थ है इस प्रकारसे पर्यायरूपसे अवच्छिन्न नित्य भेदवान् घट, ऐसा बोध होना द्वितीय वाक्यका प्राप्त होता है । और वह वाक्यार्थ होना अयोग्य है. क्योंकि जब द्रव्यरूपसे घट नित्य है तब उसमें नित्यका भेद बाधित है । और भेद व्याप्य वृत्ति है इस हेतुसे भी नित्यमें नित्यका भेद नहीं रह सकता ' यदि ऐसी शङ्का करो तो इसका उत्तर कहते है 'मूले वृक्ष सयोगी न' मूल देशमे वृक्ष मर्कट आदिके सयोगमे युक्त नही है बिना किसी बाधाके यह प्रतीति होनेसे भेदकी अव्याप्यवृत्तिता अङ्गीकार करते है । और अव्याप्यवृत्तित्व इस प्रकृत प्रसगमें प्रतियोगि वृत्तित्वरूप मानते है । और सयोगिभेदका प्रतियोगी सयोगवान् वृक्ष है, उसके किसी देशमे सयोगीका भेद भी पूर्णरूपसे है. क्योंकि शाखादि देशमे यद्यपि वृक्ष कपि सयोगी है तथापि मूल देशमे सयोग भेद भी उसमें विद्यमान है । इसी रीतिसे घटमें पर्याय अवच्छिन्नमें नित्यका भेद भी है इस प्रकारसे पर्यायरूपसे अवच्छिन्न नित्यके भेदसे युक्त घट है, ऐसे ही द्वितीय वाक्यार्थ होनेमे कोई हानि नही है ऐसा समझना चाहिये ।

एकत्वानेकत्वसप्तभगी यथा स्यादेको घट, स्यादनेको घट इति मूलभगद्वयम् । द्रव्यरूपेणैको घट, स्थासकोशकुसूलादिषु मृद्द्रव्यस्यैकस्यानुगतत्वात, तस्योर्ध्वतासामान्यरूपत्वात् । पर्यायरूपेणानेको घट, रूपरसाद्यनेकपर्यायात्मकत्वात् घटस्य ।

एकत्व तथा अनेकत्व सप्तभङ्गी की योजना इस रीतिसे करनी चाहिये—"स्यादेको घट स्यात् अनेक घट" कथचित् घट एक है और कथचित् अनेक है, ये दो मूल भग है । यहां पर द्रव्यरूपसे तो एक ही घट है, क्योंकि एक मृत्तिकारूप द्रव्य पिण्ड

१ नित्यके भेदसे युक्त २ जिसकी सत्ता पदार्थके सर्व देशमें रहे, जैसे तिलमे तेल ३ भान अथवा बोध ४ पदार्थके एक देशमें रहनेवाला ५ जिसका अभाव कहा जाता है वह प्रतियोगी कहा जाता है जैसे नित्य भेदका प्रतियोगी नित्य है, सयोगिभेदका प्रतियोगी संयोगवान् वृक्ष है.

कोश तथा कुसूल आदि पर्यायोंमें अनुगत है, और वह मृत्तिकारूप ऊर्ध्वता सामान्यरूप है। और पर्यायरूपसे अनेक घट है, क्योंकि घट रूप रस तथा गन्ध आदि अनेक पर्यायरूप है।

नन्वेवमपि सर्वं वस्तु स्यादेकं स्यादनेकमिति कथं संगच्छते? सर्वस्य वस्तुन केनापि रूपेणैक्याभावात्। न च–सत्त्वादिरूपेण सर्वस्यैक्यं सम्भवतीति वाच्यम्; सत्त्वस्यापि सकलवस्तुव्यापिन एकस्य सिद्धान्तविरुद्धत्वात। सदृशपरिणामस्यैकैकव्यक्तिगतस्य तत्तद्व्यक्त्यात्मकस्य प्रतिव्यक्तिभिन्नस्यैव सिद्धान्तसिद्धत्वात। तदुक्तम–"उपयोगो लक्षणम्" इति सूत्रे तत्त्वार्थश्लोकवार्तिके–

प्रश्न –द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिकनयका आश्रय करके एक तथा अनेकत्व आदि सप्तभङ्गी स्वीकार करने पर भी "सर्वं वस्तु स्यादेकं सर्वं वस्तु स्यादनेकम्" सब वस्तु कथचित् एक है और कथचित् अनेक है यह कैसे सगत हो सकता है क्योंकि किसी प्रकारसे सब वस्तुकी एकता नहीं हो सकती। सत्त्व आदिरूपसे भी सब वस्तुकी एकता नही कह सकते, क्योकि सपूर्ण वस्तु व्यापी एक सत्त्वका अङ्गीकार जैन सिद्धान्तके विरूद्ध है। जैन सिद्धान्तके अनुसार सदृश परिणामरूप एक एक व्यक्तिगत तथा उस २ व्यक्तिरूप सत्त्व, प्रतिव्यक्ति भिन्न ही सिद्ध है। यह विषय अन्यत्र कहा भी है। "उपयोगो लक्षणम्" ज्ञान तथा दर्शनरूप उपयोग ही जीवका लक्षण है इस सूत्रके तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकमे,–

"न हि वयं सदृशपरिणाममनेकव्यक्तिव्यापिनं युगपदुपगच्छामोऽन्यत्रोपचारात्" इति।

"अन्य व्यक्तिमे उपचारसे एक कालमे ही सदृश परिणामरूप अनेक व्यक्ति व्यापी एक सत्त्व हमें नही मानते ऐसा कहा है।

सूत्रितं च माणिक्यनन्दिस्वामिभि -

तथा माणिक्यनन्दिस्वामीने ऐसा सूत्रका भी उपन्यास किया है।

"सदृशपरिणामस्तिर्यक्खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्" इति।

"खण्ड मुण्ड आदिमें गोत्वके सदृश परिणामरूप प्रत्येक व्यक्तिमें भिन्न २ जो सदृश परिणाम है उसीको तिर्यक् सामान्य कहते है।"

विवृतं चैतन्मार्ताण्डे–

इसका विवरण प्रमेय कमलमार्त्तण्डमें कहा भी है

"सदृशपरिणामात्मकमनेक तिर्यक्सामान्यम्" इति।

"सदृश परिणामरूप प्रत्येकमें भिन्न २ अनेक सत्त्व तिर्यक् सामान्य है"

तस्मात्सत्त्वस्यापि तिर्यक्सामान्यरूपस्य प्रतिव्यक्तिभिन्नत्वात् कथं सर्वस्य वस्तुनस्सत्त्वेन रूपेणैक्यम्? इति चेन्,–अत्र ब्रूम। सत्तासामान्यमेकानेकात्मकमेव सिद्धान्ते स्वीकृतम्। सत्त्वं हि व्यक्त्यात्मनाऽनेकमपि स्वात्मनैकं भवति। पूर्वोदाहृतपूर्वाचार्यवचनानां च सर्व-

---

१ जैनमतावलम्बी

थैक्यनिराकरणपरत्वात् । अन्यथा सत्तासामान्यस्य सर्वथानेकत्वे पृथक्त्वैकान्तपक्ष एवादृतः स्यात् । तथा च "पृथक्त्वैकान्तपक्षेपि" इत्यादि स्वामिसमन्तभद्राचार्यवचनं तद्व्याख्यानभूतमकलंकादिवचनं च विरुद्ध्यते । अनेकव्यक्त्यनुगतस्यैकधर्मस्यानंगीकारे सादृश्यमेव दुर्वचनम्, यतस्तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वम् सादृश्यम । यथा–चन्द्रभिन्नत्वे सति चन्द्रगताह्लादकरत्वादिमुखे चन्द्रसादृश्यम्, एवं घटयोरपि परस्परसाधर्म्यं घटत्वरूपैकधर्ममादायैवोपपद्यते । अन्यथा साधारणधर्मासाधारणधर्मव्यवस्थैव न घटते । अनेकव्यक्तिवृत्तित्वमेव हि साधारणत्वम् । तस्मात्सत्त्वादिना सर्वस्यैक्यम् जीवादिद्रव्यभेदेनानेकत्वम चोपपन्नम् ।

इसलिये तिर्यक् सामान्यरूप सत्त्वके प्रत्येक व्यक्तिमे भिन्न २ होनेसे सत्त्वरूपसे भी सब वस्तुकी एकता नही हो सकती? ऐसी आशङ्का यदि की जाय तो उसके विषयमें कहते है एक तथा अनेकरूप सत्ता सामान्य जिन सिद्धान्तमें स्वीकृत है प्रतिव्यक्तिरूपसे सत्त्व अनेक होने पर भी स्वकीयरूपसे एक ही है। और पूर्व उदाहरणोंमें पूर्व आचार्योंके वचनोंसे जो सर्वथा एकत्व ही माना है उसीके निराकरणमे तात्पर्य्य है, न कि कथंचित् एकत्वके निराकरणमें। और ऐसा न माननेसे सर्वथा सत्ता सामान्यके अनेकत्व माननेसे पृथक्त्व एकान्त पक्षका ही आदर होगा। तब 'पृथक्त्व सामान्य पक्षमें भी' इत्यादि स्वामी समन्तभद्राचार्यका वचन तथा उसके व्याख्यानरूप अकलङ्क स्वामीके वचनकाभी विरोध आता है । तथा अनेक व्यक्तिमे अनुगत एक धर्मके अनङ्गीकार करनेमे सादृश्य ही दुर्वच है । क्योंकि उससे भिन्न हो तथा उसमें रहनेवाले धर्म पदार्थमे हो यही सादृश्य है । जैसे चन्द्रमामे भिन्न रहते चन्द्रगत आल्हाद करत्व वर्त्तुल[1] आकारयुक्तत्व यह चन्द्र सादृश्य मुखमे है । इसी प्रकार घटत्वरूप एक धर्मको लेकर दो घटोमें परस्पर साधर्म्य भी युक्त होता है। यदि ऐसा न माना जाय तो यह इसका साधारण धर्म है, तथा यह इनमें असाधारण धर्म है. यह कथन नही बन सकता। क्योंकि अनेक व्यक्तिमें अनुगतरूपसे जो वृत्तित्व है वही साधारणत्व है। इस कारणसे सत्त्व आदि रूपसे सबकी एकता है और जीव आदि अनेक द्रव्योके भेदसे अनेकता भी उपपन्न है ।

तदिदमाह स्वामिसमन्तभद्राचार्या -

यही विषय स्वामी समन्तभद्राचार्यने कहा भी है,–

" सत्सामान्यात्तु सर्वैक्य पृथग्द्रव्यादिभेदत ।
भेदाभेदविवक्षायामसाधारणहेतुवत ॥ " इति ।

"भेदाभेदकी विवक्षामे असाधारण हेतुके तुल्य सत्सामान्यसे सबकी एकता है, और द्रव्य आदिके भेदसे पृथकता भी है।"

यथा–हेतु. पक्षधर्मत्वादिभेदविवक्षायामनेक, हेतुत्वेनैकश्च । तथा सर्व सत्त्वादिभिरेकं जीवद्रव्यादिभेदेनानेकमिति तदर्थ । प्रपञ्चितश्चायमर्थो देवागमालकार इति नेहोच्यते ।

---

[1] गोलाकार

जैसे हेतु पक्षधर्मता आदिकी विवक्षासे अनेक है, और हेतुत्वरूपसे एक भी है, इस रीतिसे सत्त्व आदिकी विवक्षासे सब एक है, और जीव द्रव्य आदि भेदसे अनेक है ऐसा पूर्वोक्त कारिकाका अर्थ है। इस अर्थका विस्तार देवागम अलङ्कारमे है इसलिये यहा अधिक नहीं कहते है।

अत्राप्यनेकपदस्यैकभिन्नार्थकतया एकस्मिन् घटादावेकभेद. कथ वर्तत इति चोद्ये, पर्यावच्छेदेन वर्तते–यथा वृक्षे मूलावच्छेदेन सयोगिभेद इति, पूर्ववत्परिहारो बोध्य ।

यहा भी अनेक पदकी एकसे भिन्नार्थकता होनेसे एक घट आदि पदार्थमें एकका भेद[1] कैसे रह सकता है, ऐसा कुतर्क करने पर पर्याय अवच्छिन्नरूपसे भेद है ऐसा समाधान देना चाहिये। जैसे वृक्षमे मूलदेशमें सयोगिभेद है और शाखा आदि देशमें सयोगी भी। इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे परिहार करना चाहिये।

एवमयं स्याज्जीव. स्यादजीव इति मूलभगद्वयम् । तत्रोपयोगात्मना जीव , प्रमेयत्वाद्यात्मनाऽजीव इति तदर्थ ।

इस प्रकार यह कथंचित् जीव है, और कथंचित् अजीव भी है ये मूल दो भङ्ग है। वहा पर उपयोगरूपसे तो जीव है और प्रमेयत्व आदिरूपसे अजीव भी है यह मूल दो भगोका अर्थ है।

तदुक्तं भट्टाकलकदेवै

यही विषय अकलङ्कदेवने ऐसा कहा है—

> " प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मक ।
> ज्ञानदर्शनतस्तस्माच्चेतनाऽचेतनात्मक ॥" इति ।

"प्रमेयत्व आदि धर्मोमे जीव अचिद्रूप है, तथा ज्ञान दर्शन उपयोगसे चिद्रूप भी है, इस कारणसे जीव चेतन तथा अचेतनरूप भी है"

अजीवत्व च प्रकृतेऽजीववृत्तिप्रमेयत्वादिधर्मवत्त्वम , जीवत्वं च ज्ञानदर्शनादिमत्त्वमिति द्रष्टव्यम् ।

इस प्रसङ्गमें अजीव वृत्ति प्रमेयत्त्व आदि धर्मवत्ता तो अजीवत्व है, और ज्ञान दर्शन आदिमत्त्व जीवत्व है, ऐसा समझना चाहिये।

नन्वयमनेकान्तवादश्छलमात्रमेव, तदेवास्ति तदेव नास्ति, तदेव नित्यं तदेवानित्यमिति प्ररूपणारूपत्वादनेकान्तवादस्य । इति चेन्न,–छललक्षणाभावात् । अभिप्रायान्तरेण प्रयुक्तस्य शब्दस्यार्थान्तर परिकल्प्य दूषणाभिधान छलमिति छलसामान्यलक्षणम । यथा नवकम्बलोयं देवदत्त इति वाक्यस्य नूतनाभिप्रायेण प्रयुक्तस्यार्थान्तरमाशंक्य कश्चिद्दूषयति, नास्य नवकम्बलास्सन्ति दरिद्रत्वात् , नह्यस्य द्विकम्बलवत्त्वमपि सम्भाव्यते; कुतो नवेति । प्रकृते

---

१ जहा एकत्व प्रतियोगितावच्छेदक है वहा एकका भेद नही रह सक्ता। भेदकी व्याप्यवृत्तिता मानकर प्रश्न है

चानेकान्तवादे तादृशछललक्षणस्य प्रसक्तिरेव नास्ति, अभिप्रायान्तरेण प्रयुक्तस्य शब्दस्या-र्थान्तरपरिकल्पनाभावात् ॥

प्रश्नः– अनेकान्तवाद छलमात्र है । क्योंकि अनेकान्तवादमें वही पदार्थ है, वही नहीं है, वही नित्य है तथा वही अनित्य भी है, इत्यादि विषयका निरूपण है ? यह शङ्का नहीं कर सकते । अनेकान्त वादमें छलका लक्षण नहीं घट सकता । अन्य अभिप्रायसे कहेहुये शब्दका अन्य अर्थ कल्पना करके दूषण देना छल है, यही छल सामान्यका लक्षण है । जैसे "नव कम्बलोऽयम् देवदत्त" नव अर्थात् नूतन कबल युक्त देवदत्त है, इस वाक्यमें नूतन कंबल युक्त इस अभिप्रायसे कथित 'नव' शब्दकी अन्य अर्थमें कल्पना करके कोई दूषण देता है कि इस पुरुषके नौ (९) कबल कहां है, क्योंकि यह दरिद्री है, इसके तो दो २ कम्बलकी भी सभावना नही है. और नौ (९) कम्बल कहासे हो सक्ते है । और इस अनेकान्त वादमें उस प्रकारके छलके लक्षणकी प्राप्ति भी नही है । क्योकि अन्य अभिप्रायसे प्रयुक्त शब्दकी अन्य अर्थमें कल्पनाका अभाव है ।

अथ संशयहेतुरनेकान्तवाद', एकस्मिन्वस्तुनि विरुद्धानामस्तित्वनास्तित्वादिधर्माणामसम्भवात्, एकवस्तुविशेष्यकविरुद्धनानाधर्मप्रकारकज्ञान हि सशय । यथा- स्थाणुर्वा न वेत्याकारकज्ञान एकधर्मिविशेष्यकस्थाणुत्वतदभावप्रकारकज्ञानत्वात्संशय । तथा चास्तित्व-नास्तित्वादिरूपविरुद्धनानाधर्मप्रकारकघटादिरूपैकवस्तुविशेष्यकज्ञानजनकत्वात्संशयहेतुरने-कान्तवाद । इति चेन्न,-विशेषलक्षणोपलब्धे । सशयो हि सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्षाद्विशे-षस्मृतेश्च जायते यथा स्थाणुपुरुषोचिते देशे नातिप्रकाशान्धकारकलुषाया वेलायामूर्ध्वमात्र-सामान्यं पश्यत, वक्रकोटरपक्षिनीडादीन् स्थाणुगतान्विशेषान्वस्त्रसयमनशिर कण्डूयनशि-खाबन्धनादीन्पुरुषगतांश्चानुपलभमानस्य तेषां च स्मरत पुरुषस्याय स्थाणुर्वा पुरुषो वेति संशय उपपद्यते । अनेकान्तवादे च विशेषोपलब्धिरप्रतिहतैव, स्वरूपपररूपादिविशेषाणा प्रत्यर्थमुपलम्भात । तस्माद्विशेषोपलब्धेरनेकान्तवादो न संशयहेतु ।

अब कदाचित् यह कहो कि, अनेकान्तवाद सशयका हेतु है । क्योंकि एक ही वस्तुमें विरुद्ध अस्तित्व तथा नास्तित्व आदि धर्म सभव नही है । जैसे यह सम्मुख स्थित पदार्थ स्थाणु है वा नही यह ज्ञान एक पदार्थ विशेष्यक तथा स्थाणुत्व तथा उसके अभाव विशेषणक होनेसे सशय है इसी रीतिसे अस्तित्व नास्तित्व आदिरूप विरुद्ध नाना धर्म विशेषणयुक्त घट आदि पदार्थ विशेष्यक ज्ञानका जनक होनेसे अनेकान्त वाद संशयका हेतु है? यह शका भी नही कर सकते । क्योंकि सशयके विशेष लक्षणकी उपलब्धि है । सामान्य अंशके प्रत्यक्ष, विशेष अशके अप्रत्यक्ष और विशेषकी स्मृति होनेसे सशय होता है । जैसे स्थाणु तथा पुरुषकी स्थितिके योग्य देशमें और न अति प्रकाश न अति अन्धकारसहित वेला ऊर्ध्वता सामान्यके देखनेवाले और स्थाणुमें रहने-

---

१ नव इस शब्दका भेद अर्थ नूतन तथा ९ संख्या भी है

वाले वक्रकोटर तथा पक्षियोंके खुंथे आदि विशेषोंको तथा पुरुषनिष्ठ वस्त्रधारण शिखा-बन्धन तथा हस्त पाद आदि विशेषोंको न देखनेवाले मनुष्यको स्थाणु पुरुषके विशेषोंके स्मरणसे यह स्थाणु है वा पुरुष है ऐसा संशयात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है । और अनेकान्तवादमें तो विशेष धर्मोंकी उपलब्धि निर्बाध ही है, क्योंकि स्वरूप पररूप विशेषोकी उपलब्धि प्रत्येक पदार्थमें है । इसलिये विशेषकी उपलब्धिसे अनेकान्तवाद सशयका हेतु नही है ।

अथैवमपि संशयो दुर्वार, तथा हि-घटादावस्तित्वादिधर्माणां साधका प्रतिनियता हेतवस्सन्ति वा न वा ? न चेद्विप्रतिपन्नं प्रति प्रतिपादनासम्भव । सन्ति चेदेकत्र वस्तुनि परस्परविरुद्धास्तित्वनास्तित्वादिसाधकहेतुसद्भावात्संशयो दुर्वार ? इति चेन्न, अस्तित्वनास्तित्वयोरवच्छेदकभेदेनार्प्यमाणयोर्विरोधाभावात् । यथा-एकस्यैव देवदत्तस्यैकापेक्षया पितृत्वमन्यापेक्षया पुत्रत्व च परस्परमविरुद्धम्, यथा चान्वयव्यतिरेकिधूमादिहेतौ सपक्षे महानसादौ सत्त्व विपक्षे महाह्रदादावसत्त्वं च परस्परमविरुद्धम् । तथास्तित्वनास्तित्वयोरपि । तयोर्विरोधश्चानुपदमेव स्पष्टं परिहरिष्यते ॥

शङ्का—ऐसा मानने पर भी सशयका निवारण दु साध्य है । जैसे घट आदि पदार्थोंमें आस्तित्व आदि धर्मोंके साधक हेतु प्रतिनियत है वा नही । यदि अस्तित्व आदिके साधक हेतु प्रतिनियत नही है तो यह विरुद्ध है, क्योंकि अस्तित्व आदि धर्मोंके प्रतिपादक हेतु नही है तो पदार्थोंका प्रतिपादन ही असभव है । और यदि प्रतिपादक हेतु है तो एक वस्तुमें परस्पर विरुद्ध अस्तित्व तथा नास्तित्वके साधक हेतुके सद्भावसे संशय दुर्निवारणीय है ? यह शङ्का अयुक्त है, क्योंकि अस्तित्व नास्तित्वके अवच्छेदक भेदसे योजना करनेसे विरोधका अभाव है । जैसे एक ही देवदत्तमें एक (पुत्र) की अपेक्षासे पितृत्व और अन्य निज पिताकी अपेक्षासे पुत्रत्व भी परस्पर अविरुद्ध है, और जैसे अन्वयव्यतिरेकी धूमादि हेतुका सपक्ष महानस आदिमें सत्त्व और विपक्ष महाह्रदादिमें असत्त्व भी परस्पर अविरुद्ध है यही दशा अर्थात् अपेक्षासे सत्त्व तथा असत्त्व अस्तित्व तथा नास्तित्वका भी एक ही वस्तुमें अविरुद्ध है । और उनके विरोधका परिहार आगे चलके शीघ्र ही करेंगे

ननु-अनेकान्तवादे विरोधादयोऽष्टदोषास्सम्भवन्ति । तथा हि—एकत्रार्थे विधिप्रतिषेधरूपावस्तित्वनास्तित्वधर्मौ न सम्भवत, शीतोष्णयोरिव भावाभावयोः परस्परं विरोधात् । अस्तित्वं हि भावरूपं, विधिमुखप्रत्ययविषयत्वात् । नास्तित्वं च प्रतिषेधरूप, नञुल्लिखितप्रतीतिविषयत्वात् । यत्रास्तित्वं तत्र नास्तित्वस्य विरोध, यत्र च नास्तित्वं तत्रास्तित्वस्य विरोध., इति

---

१ अन्यसे पृथक् करनेवाले स्वरूप पररूपादि धर्म. २ जिस हेतुका सपक्ष विपक्षमें सत्त्व असत्त्व दोनो पाया जाय उसको अन्वयव्यतिरेकी कहते है पक्षके समानधर्मवाला धर्मी सपक्ष कहा जाता है इसके विरुद्ध विपक्ष कहलाता है

विरोधः ॥ अस्तित्वस्याधिकरणमन्यन्नास्तित्वस्याधिकरणमन्यदित्यस्तित्वनास्तित्वयोर्वैयधिकरण्यम् । तच्च विभिन्नाधिकरणवृत्तित्वम् ॥ येन रूपेणास्तित्व येन च रूपेण नास्तित्वं तादृशरूपयोरपि प्रत्येकमस्तित्वनास्तित्वात्मकत्व वक्तव्यम्, तच्च स्वरूपपररूपाभ्यां, तयोरपि प्रत्येकमस्तित्वनास्तित्वात्मकत्वं स्वरूपपररूपाभ्यामित्यनवस्था । अप्रामाणिकपदार्थपरम्परापरिकल्पनाविश्रान्त्यभावश्चानवस्थेत्युच्यते ॥ येन रूपेण सत्त्वं तेन रूपेणासत्त्वस्यापि प्रसग, येन रूपेण चासत्त्वं तेन रूपेण सत्त्वस्यापि प्रसग, इति संकरः । "सर्वेषां युगपत्प्राप्तिस्संकरः ।" इत्यभिधानात् ॥ येन रूपेण सत्त्वं तेन रूपेणासत्त्वमेव स्यान्न तु सत्त्व, येन रूपेण चासत्त्वं तेन सत्त्वमेव स्यान्नत्वसत्त्वम्, इति व्यतिकर । "परस्परविषयगमन व्यतिकर" इति वचनात् ॥ सत्त्वासत्त्वात्मकत्वे च वस्तुन इदमित्थमेवेति निश्चेतुमशक्तेस्संशय ॥ ततश्चानिश्चयरूपाऽप्रतिपत्तिः ॥ ततस्सत्त्वासत्त्वात्मनो वस्तुनोऽभाव ॥ इति ॥

कदाचित् यह कहो कि अनेकान्तवादमें विरोध आठ दोषोंका संभव है, जैसे एक पदार्थमें विधि तथा निषेधरूप अस्तित्व तथा नास्तित्वरूप धर्म सभव नही होसकते, क्योंकि शीत और उष्णके समान भाव और अभावका परस्पर विरोध है, विधिमुखसे प्रतीति (बोध) का विषय होनेसे अस्तित्व तो भावरूप है और नञ्जनित निषेधमुखसे बोधका विषय होनेसे नास्तित्व अभावरूप है । जहां पर किसी पदार्थका अस्तित्व है वहां पर उसके नास्तित्वका विरोध है और जहा पर जिस पदार्थका नास्तित्व है वहां पर उसके अस्तित्वका विरोध है, इस रीतिसे जैन मतमें विरोध दोष है । अस्तित्वका अधिकरण अन्य होता है और नास्तित्वका अन्य होता है इस रीतिसे अस्तित्व नास्तित्वका वैयधिकरण्य[1] है, और वैयधिकरण्य भिन्न २ अधिकरणमें वृत्तित्वरूप है, और इस मतमें अस्तित्व तथा नास्तित्व दोनो एक ही अधिकरणमें है इसलिये वैयधिकरण्य दोष है । तथा जिस रूपसे अस्तित्व तथा नास्तित्व रहते है उन दोनो रूपोंका प्रत्येकको अस्तित्व तथा नास्तित्वरूप कहना चाहिये, और वह अस्तित्व तथा नास्तित्व स्वरूप तथा पररूपसे होता है, और उन स्वरूप तथा पररूपमेंसे प्रत्येकको अस्तित्व तथा नास्तित्वस्वरूप अन्य स्वरूप तथा पररूपसे हो सकता है उनका भी दूसरे स्वरूप तथा पररूपसे इस प्रकार अनवस्था दोष भी है, क्योंकि अप्रामाणिक पदार्थोंकी परंपरासे जो कल्पना है उस कल्पनाके विश्रामके अभावको ही अनवस्था कहते है । और जिस रूपसे सत्ता है उसी रूपसे असत्ताकी भी प्राप्ति है ऐसे ही जिस रूपसे असत्त्व है उसीरूपसे सत्त्वकी प्राप्ति है क्योंकि सत्त्व असत्त्व स्थितिमें एक ही पदार्थका स्वरूप तथा पररूपसे स्वरूपका कुछ भी परिवर्त्तन नहीं होता । और एक कालमें-ही एक वस्तुमें सब धर्मोंकी प्राप्ति ही सकर दोष है" । ऐसा अन्यत्र कहा गया है । तथा जिस रूपसे सत्त्व है उस रूपसे असत्त्व भी रहेगा न कि सत्त्व, और जिस रूपसे असत्त्व

---

१ पृथक् २ अधिकरणमें वृत्तिता अर्थात् रहनेको वैयधिकरण्य कहते है जैसे घटमें घटत्वका अस्तित्व है और नास्तित्व घटमे

है उसी रूपसे सत्त्व रहेगा नकि असत्त्व इस प्रकार व्यतिकर दोष है । परस्पर विषय गमनको व्यतिकर कहते है" ऐसा अन्यत्र वाक्य है । तथा एक ही वस्तु सत्त्व असत्त्व उभयरूप होनेसे यह ऐसा ही अर्थात् सत्त्वका असत्त्वरूप है, यह निश्चय करनेको अशक्य है इसलिये संशय दोष भी है । और संशय होनेसे अनिश्चयरूप अप्रतिपत्ति अर्थात् बोधका अभाव है, अप्रतिपत्ति होनेसे सत्त्व असत्त्वस्वरूप वस्तुका ही अभाव भान होता है । ये आठ दोष अनेकान्त मतमें है ।

अत्र वदन्त्यभिज्ञा । कथंचित्प्रतीयमाने स्वरूपाद्यपेक्षया विवक्षितयोस्सत्त्वासत्त्वयो प्रतीयमानयोर्न विरोध । अनुपलम्भसाध्यो हि विरोध । न हि स्वरूपादिना वस्तुनस्सत्त्वे तदैव पररूपादिभिरसत्त्वस्यानुपलम्भोस्ति । स्वरूपादिभिस्सत्त्वस्येव पररूपादिभिरसत्त्वस्यापि प्रतीतिसिद्धत्वात ।

इस विषयमें शास्त्रोंमें प्रवीण जन कहते है,— किंसी अपेक्षासे प्रतीयमान एक वस्तुमें स्वरूप आदिकी अपेक्षासे विवक्षित तथा भासमान सत्त्व और असत्त्वका विरोध नहीं है । क्योंकि विरोधका साधक अभाव होता है, और स्वरूप आदिकी अपेक्षासे वस्तुका सत्त्व होने पर उसी समय पररूप आदिसे असत्त्वका अनुपलम्भ अर्थात् अप्राप्ति नहीं है । जैसे एक घट वस्तुमें घटत्त्वका उपलम्भ होनेसे और पटत्त्वका अनुपलम्भ इसवास्ते घटत्त्व पटत्वका विरोध है । परन्तु यहा तो जैसे स्वरूप आदिसे घटका सत्त्व है ऐसे ही पररूपादिसे असत्त्व भी अनुभव सिद्ध है ।

न खलु वस्तुनस्सर्वथा भाव एव स्वरूपं, स्वरूपेणेव पररूपेणापि भावप्रसंगात् । नाप्यभाव एव, पररूपेणेव स्वरूपेणाप्यभावप्रसंगात् ।

किसी वस्तुका निश्चितरूपसे केवल भाव ही स्वरूप नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे जैसे स्वरूपे सभावरूपताका भान होता है ऐसे ही पररूपसे भी भावरूपका प्रसङ्ग हो जायगा । और केवल अभाव भी स्वरूप नहीं है. क्योकि पररूपसे जैसे अभाव भासता है ऐसे ही स्वरूपसे भी अभावका प्रसङ्ग हो जायगा ।

ननु—पररूपेणासत्त्व नाम पररूपासत्त्वमेव । न हि घटे पटस्वरूपाभावे घटो नास्तीति वक्तुं शक्यम् । भूतले घटाभावे भूतले घटो नास्तीति वाक्यप्रवृत्तिवत् घटे पटस्वरूपाभावे पटोनास्तीत्येव वक्तुमुचितत्वात् । इति चेन्न;—विचारासहत्वात् । घटादिषु पररूपासत्त्वं पटादिधर्मो घटधर्मो वा ? नाद्य , व्याघातात् । न हि पटरूपासत्त्वं पटेस्ति । पटस्य शून्यत्वापत्तेः । न च स्वधर्म स्वस्मिन्नास्तीति वाच्यम्, तस्य स्वधर्मत्वविरोधात् । पटधर्मस्य घटाद्याधारकत्वायोगाच्च । अन्यथा वितानविवितानाकारस्यापि तदाधारकत्वप्रसंगात् । अन्त्यपक्षस्वीकारे तु विवादो विश्रान्त., भावधर्मयोगाद्भावात्मकत्ववदभावधर्मयोगादभावात्मकत्वस्यापि स्वीकरणी-

---

१ जब एक स्थानगत वस्तुमें दो धर्मका अभाव प्राप्त होता है तब उस अभावसे उनका विरोध है जैसे एक स्थानमे प्रकाश और अन्धकारका वा एक वस्तुमे घटत्व पटत्वका ।

यत्वात्, एवं च घटो नास्तीति प्रयोग उपपन्न । अन्यथा यथैवाभावधर्मयोगेप्यसन्न स्यात्तथैव भावधर्मयोगेपि सन्न स्यात् ।

शङ्का–पररूपसे असत्त्व नाम परकीय रूपका असत्त्व, अर्थात् दूसरे पट आदिका रूप घटमें नहीं है । क्योंकि घटमें पटस्वरूपका अभाव होनेसे घट नहीं है ऐसा नही कह सकते किन्तु भूतलमें घटका अभाव होने पर भूतलमें घट नहीं है, इस वाक्यकी प्रवृत्तिके समान घटमें पटके स्वरूपका अभाव होनेसे घटमें पट नहीं है यही कथन उचित है? । यह शङ्का नहीं कर सकते । क्योंकि ऐसा कथन विचार पर नही ठहर सकता । घट आदि पदार्थोंमें जो पर पट आदिरूपका असत्त्व है वह पट आदिका धर्म है अथवा घटका धर्म है? प्रथम पक्ष नही है अर्थात् पररूपका असत्त्व पट आदिका धर्म नही है. ऐसा माननेसे पररूपका ही व्याघात होगा, क्योंकि पररूपका असत्त्वरूप पट नहीं है । ऐसा माननेसे तो पटकी शून्यरूपता होजायगी । और स्वकीय धर्म अपनेमें ही नहीं है ऐसा कह नहीं सकते, क्योंकि तब तो स्वधर्मत्व अर्थात् अपना धर्म इस कथनका ही विरोध हो जायगा । और पटके धर्मका आधार घट आदि पदार्थ हो नहीं सकते । क्योंकि ऐसा माननेसे तन्तुवाय (जुलाहा) भी तानावानाका आधार हो जायगा और अन्त्य पक्ष स्वीकार करने पर, अर्थात् पररूपका असत्त्व भी घटका धर्म है ऐसा मानने पर तो विवादहीका विश्राम (समाप्ति) होता है । क्योंकि भाव धर्मके सम्बन्धसे जैसे पदार्थ भावस्वरूप मानाजाता है ऐसे ही अभावरूप धर्मके सम्बन्धसे अभावरूप भी स्वीकार करना ही होगा । और ऐसा माननेसे घटकी सत्तामे भी घट नही है ऐसा प्रयोग होजायगा । और इसके विरुद्ध माननेसे जैसे अभावरूप धर्मके सम्बन्धसे घट असत् नहीं होगा. ऐसे ही भावरूप धर्मके सम्बन्धसे सत् रूप भी नही होगा ।

ननु–घटे पटरूपासत्त्वं नाम घटनिष्ठाभावप्रतियोगित्वम् । तच्च पटधर्म । यथा भूतले घटो नास्तीत्यत्र भूतलनिष्ठाभावप्रतियोगित्वमेव भूतले नास्तित्वं, तच्च घटधर्म । इति चेन्न,–तथापि पररूपाभावस्य घटधर्मत्वाविरोधात्, घटाभावस्य भूतलधर्मत्ववत् । तथा च घटस्य भावाभावात्मकत्व सिद्धम् । कथंचित्तादात्म्यलक्षणसम्बन्धेन सम्बन्धिन एव स्वधर्मत्वात् ।

आशङ्का–घटमें पररूपके असत्त्वका अर्थ यह है कि घटनिष्ठ जो अभाव अर्थात् घटमें रहनेवाला जो अन्य पदार्थोंका अभाव, उस अभावका प्रतियोगित्वरूप । और यह प्रतियोगिता पटधर्मरूप होगी । जैसे भूतलमें घट नही है यहा पर भूतलमें रहनेवाला जो अभाव उस अभावकी प्रतियोगिता ही भूतलमें नास्तितारूप पडती है और प्रतियोगिता वा नास्तिता घटका धर्म है? ऐसा नहीं कह सकते–ऐसा मानने पर भी पररूपका जो अभाव उसके घट धर्म होनेमें कोई भी विरोध नहीं है, क्योंकि भूतलमें घटाभाव भूतलका धर्म है ऐसे ही पररूपाभाव भी घटका धर्म है । इस रीतिसे घटका भाव अभाव उभय

सिद्ध होगए। क्योंकि किसी अपेक्षासे तादात्म्य अर्थात् अभेद सम्बन्धसे सम्बन्धीही-को स्वधर्मरूपता होजाती है।

नन्वेव रीत्या घटस्य भावाभावात्मकत्वे सिद्धेपि घटोस्ति पटो नास्तीत्येव वक्तव्यम्। पटा-भावप्रतिपादनपरवाक्यस्य तथा प्रवृत्ते। यथा भूतले घटो नास्तीति घटाभावप्रतिपादनपरं वाक्यम् प्रवर्तते–न तु भूतल नास्तीति, तथा प्रकृते पटाभावस्य घटात्मकत्वेपि पटो नास्ती-त्येव प्रयोगो युक्त। अभावबोधकवाक्यस्य प्रतियोगिप्रधानत्वात्। यथा घटप्रागभावस्य कपा-लात्मकत्वेपि कपालदशायां घटो भविष्यतीत्येव प्रागभावप्रतिपादकः प्रयोगो दृष्टः, न तु कपा-लो भविष्यतीति। यथा च घटध्वसस्योत्तरकपालात्मकत्वेपि घटो नष्ट इत्येव प्रयोग', तथा प्रकृतेपि। इति चेदुच्यते,–घटस्य भावाभावात्मकत्वे सिद्धेस्माकं विवादो विश्रान्त, समीहित-सिद्धे। शब्दप्रयोगस्तु पूर्वपूर्वप्रयोगानुसारेण भविष्यति। न हि पदार्थसत्ताधीनश्शब्दप्र-योग। तथा हि–देवदत्त पचतीति प्रयोगो वर्तते। तत्र देवदत्तपदार्थश्शरीर वा? आत्मा वा? शरीरविशिष्टात्मा वा? आद्ये देवदत्तस्य शरीर पचतीति प्रयोगापत्ति। द्वितीये देवदत्तस्यात्मा पचतीति प्रयोगापत्ति। शरीरविशिष्टात्मा पचतीति प्रयोगाभावात्तृतीयपक्षेपि नोपपत्ति। तथा च प्रतिपादितप्रयोगाभावे पूर्वपूर्वप्रयोगाभाव एव शरणम्। तथा च पूर्वपूर्वप्रयोगानुगुण्येन प्रयोगप्रवृत्तेश्शब्दप्रयोगस्य पर्यनुयोगानर्हत्वात्।

शङ्का। इस पूर्वोक्त रीतिसे घटकी भाव अभाव उभयरूपता सिद्ध होने पर भी घट है पट नहीं है ऐसा ही प्रयोग करना चाहिये क्योंकि पटके अभाव प्रतिपादनमें तत्पर वाक्यकी प्रवृत्ति इस प्रकार हो सकती है। जैसे भूतलमें घट नहीं है ऐसा वाक्य घटका अभाव कथन करनेमें प्रवृत्त होता है। न कि भूतल नही है इस रीतिसे ऐसे ही पटाभावके घटरूप होने पर पट नही है ऐसा ही वाक्यप्रयोग होना चाहिये। क्योंकि अभाव-बोधक वाक्यमे अभावका प्रतियोगी ही प्रधान रहता है। और जैसे कपाल दशामे घटका प्रागभाव यद्यपि कपालस्वरूप होने पर भी वहा कपाल दशामें घटके प्राग् अभाव-प्रतिपादक वाक्यका प्रयोग घट होगा ऐसा ही होता है न कि कपाल होगा ऐसा प्रयोग! ऐसे ही घटका प्रध्वसाभाव कपालस्वरूप होने पर भी घट नष्ट हुआ ऐसा ही प्रयोग दृष्ट है. न कि कपाल नष्ट हुआ ऐसा प्रयोग कहीं दृष्ट है। ऐसे ही प्रकृत स्थलमें भी पट आदि पटरूपाभावसे पट आदि नहीं है यही प्रयोग होना उचित है? । यदि ऐसी आशङ्का करो तो इसका उत्तर कहते हे। घटको भाव अभाव उभय स्वरूप सिद्ध होनेसे हमारे विवादकी समाप्ति है क्योंकि उभयरूपता माननेहीसे हमारे अभीष्ट-की सिद्धि है। और शब्दप्रयोग तो पूर्वपूर्व प्रयोगके अनुसार होगा। क्योंकि शब्द-प्रयोग पदार्थकी सत्ताके वशीभूत नही है। जैसे "देवदत्तः पचति" देवदत्त पाक करता है ऐसा प्रयोग है। वहा पर देवदत्त पदका अर्थ देवदत्तका शरीर है, अथवा आत्मा है, वा शरीरसहित आत्मा है? यदि प्रथम पक्ष है तब तो "देवदत्तस्य शरीर पचति"

देवदत्तका शरीर पकाता है ऐसा प्रयोग होना चाहिये, यदि द्वितीय पक्ष है तो देवदत्तका आत्मा पकाता है ऐसा शब्दप्रयोग होना उचित है, और शरीरसहित देवदत्तका आत्मा पकाता है ऐसे प्रयोगके अभावसे तृतीय पक्ष भी युक्त नहीं है । इस रीतिसे पूर्वकथित तीनों प्रकारके प्रयोग न होनेमें पूर्वपूर्व प्रयोगका अभाव ही शरण है । इस प्रकार पूर्व २ प्रयोगके अनुकूल ही शब्द वा वाक्य प्रयोगोकी प्रवृत्ति लोकमें दृष्ट है इस हेतुसे पदार्थसत्ताका आश्रय लेकर शब्दप्रयोगमें आक्षेप करना अयोग्य है ।

किञ्च—घटादौ वर्तमान पररूपाभावो घटाद्भिन्नोऽभिन्नो वा ? यदि भिन्नस्तस्यापि परत्वात्तदभावस्तत्र कल्पनीय. । अन्यथा तस्य परत्वानुपपत्त्या घटादे' कथंचिदसद्रूपत्वासिद्धे । तदभावकल्पनायां चानवस्था, तस्यापि परत्वात् । घटादिषु पररूपस्यातानवितानाकारस्याभावाभावपरिकल्पनायां तेषां घटत्वापत्तिश्च, निषेधद्वयेन प्रकृतरूपसिद्धे । यद्यभिन्नस्तर्हि सिद्ध स्वस्मादभिन्नेन भावधर्मेण घटादौ सत्त्ववदभावधर्मेण तादृशेनासत्त्वमपि स्वीकरणीयमिति ।

और भी घट आदिमें पररूपका जो अभाव है वह घटसे भिन्न है, अथवा अभिन्न है ? यदि घटसे भिन्न है तव तो उसके भी पर होनेसे वहां उसके अभावहीकी कल्पना करनी चाहिये और यदि ऐसा न मानो तो पररूपाभावके घटसे परत्व अयुक्त होनेसे घट आदिकी जो कथचित् असत् रूपता अनेकान्त पक्षमे मानी जाती है उस असत् रूपताकी असिद्धि होगी । और पररूपाभाव की भी यदि अभाव कल्पना करो तो अनवस्था दोष आजायगा. क्योंकि वह अभाव भी पररूप ही है । और घट आदिमें आतानवितानाकार (पटादिकी रचना) स्वरूप पररूपके अभावाभावकी कल्पना करने पर वे सब घटरूप हो जायेंगे क्योंकि दो निषेधसे प्रकृतरूपकी सिद्धि होती है. जैसे घटाभावाभाव घटस्वरूप होता है ऐसे ही घटमे पररूपाभावाभाव भी घटस्वरूप ही होजायगा और यदि पररूपाभाव घटसे अभिन्न है तो हमारा अभीष्ट सिद्ध होगया क्योंकि अपनेसे अभिन्न भाव धर्मसे घट आदिमें जैसे सत्त्वरूपता है ऐसे ही अपनेसे अभिन्न अभाव धर्मसे असत्त्वरूपता भी घट आदिमें स्वीकार करनी चाहिये ।

ननु—स्वरूपेण भाव एव पररूपेणाभाव' पररूपेणाभाव एव च स्वरूपेण भाव इति भावाभावयोरेकत्र वस्तुनि भेदाभावाद्वस्तुन कुतस्तदुभयात्मकता, इति चेत् , भावाभावापेक्षणीयस्य निमित्तस्य भेदादिति ब्रूम । स्वद्रव्यादिकं हि निमित्तमपेक्ष्य भावप्रत्ययं जनयत्यर्थ', परद्रव्यादिक चाभावप्रत्ययम्, इत्येकत्वद्वित्वादिसख्यावदेकवस्तुनि भावाभावयोर्भेद । नह्येकत्र द्रव्ये द्रव्यान्तरमपेक्ष्य द्वित्वादिसख्या प्रकाशमाना स्वात्ममात्रोपक्ष्यैकत्वसंख्यातोन्या न प्रतीयते । नाप्येकत्वद्वित्वरूपोभयसंख्यातद्वतोभिन्नैव, द्रव्यस्यासख्येयत्वप्रसगात् । संख्यासमवायाद्द्रव्यस्य सख्येयत्वमिति तु न, कथञ्चित्तादात्म्यव्यतिरेकेण समवायासम्भवात् । तस्मात्सिद्धोऽपेक्षणीयभेदात्संख्यावत्सत्त्वासत्त्वयोर्भेद । भिन्नयोश्चानयोरेकवस्तुनि प्रतीयमानत्वात्को विरोध. ।

शङ्का—स्वरूपसे भावहीका ग्रहण होता है और पररूपसे अभावहीका ऐसे ही पररूपसे अभाव मात्र और स्वरूपसे भाव मात्र गृहीत होता है इस प्रकार एक वस्तुमें भाव अभावका कोई भी भेद नही तब वस्तु भाव अभाव उभयस्वरूप कैसे होसकता है ? यदि ऐसा कहो तो भाव तथा आभवकी अपेक्षाके निमित्तभूत जो पदार्थ है उनके भेदसे भावाभावस्वरूप वस्तु है ऐसा कहते हैं क्योंकि स्वद्रव्य आदि निमित्तकी अपेक्षा करके वस्तु भावरूप बोधको उत्पन्न करता है और परद्रव्य आदि निमित्त मानकर अभावरूप बोधको उत्पन्न करता है इस प्रकार एक वस्तुमें एकत्व द्वित्व सख्याके सदृश भाव अभावका भेद है। क्योंकि एक द्रव्यमें द्रव्यान्तरकी अपेक्षा करके प्रकाशमान जो द्वित्व आदि सख्या है वह स्वकीय निजस्वरूपकी अपेक्षा करनेवाली एकत्व संख्यासे भिन्न नही प्रतीत होती ? और एकत्व द्वित्व एतत् उभय सख्या भी सख्यावान् पदार्थसे भिन्न नही है क्योंकि सख्यासे सख्यावान् द्रव्य सर्वथा भिन्न होनेसे द्रव्य असंख्येय हो जायगा। और सख्याका द्रव्यमें समवाय सम्बन्ध होनेसे द्रव्य सख्येय रहेगा ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि कथंचित् तादात्म्यसे भिन्न होनेसे समवायका सिद्ध होना असभव है। इसलिये सख्याके समान अपेक्षाके निमित्तभूत वस्तुके भेदसे सत्त्व और असत्त्वका भेदसे भी सिद्ध होगया। और एक पदार्थमें भिन्नरूपसे भासमान भाव अभाव अथवा सत्त्वका क्या विरोध है।

ननु—सत्त्वासत्त्वयोरेकवस्तुनि प्रतीतिर्मिथ्येति चेन्न; बाधकाभावात्। विरोधो बाधक इति चेन्न, परस्पराश्रयापत्ते, सति हि विरोधे प्रतीतेस्तेन बाध्यमानत्वान्मिथ्यात्वसिद्धि[1], ततश्च सत्त्वासत्त्वयोर्विरोधसिद्धि। इति।

शङ्का। एक वस्तुमें सत्त्व तथा असत्त्वकी प्रतीति ही मिथ्या है। ऐसी शङ्का नही कर सकते क्योंकि विना किसी बाधाके सत्त्व असत्त्व दोनो भासते है। सत्त्व असत्त्वका विरोध ही बाधक है यह कथन भी युक्त नहीं है क्योकि इन दोनोंकी सिद्धिमें अन्यो-न्याश्रय दोष है। प्रथम प्रतीतिका विरोध हो तो उससे प्रतीति बाधित होके उसका मिथ्यात्व सिद्ध हो। और प्रतीतिका मिथ्यात्व सिद्ध होनेसे सत्त्व असत्त्वका विरोध सिद्ध हो। यह अन्योन्याश्रय है। इसलिये सत्त्व असत्त्वका एक वस्तुमें भान होना मिथ्या नहीं है॥

किञ्च-विरोधस्तावत्त्रिधा व्यवतिष्ठते, वध्यघातकभावेन, सहानवस्थानात्मना वा, प्रतिबद्ध्य-प्रतिबन्धकरूपेण वा। तत्राद्ये त्वहिनकुलाग्न्युदकादि विषय। स चैकस्मिन् काले वर्तमानयो-स्संयोगे सति भवति, संयोगस्यानेकाश्रयत्वात् द्वित्ववत्। नासंयुक्तमुदकमग्निं नाशयति, सर्व-त्राग्न्यभावप्रसंगात्। ततस्सति सयोगे बलीयसोत्तरकालमितरद्बाध्यते। न हि तथाऽस्तित्वना-

---

१ बोध.

स्तित्वयो' क्षणमात्रमप्येकस्मिन्वृत्तिरस्तीति भवताभ्युपगम्यते, यतो वध्यघातकभावरूपो विरोधस्तयो कल्प्येत। यदि चैकस्मिंस्तयोर्वृत्तिरभ्युपगम्यते, तदा तयोस्तुल्यबलत्वान्न वध्यघातकभावः॥ नापि सहानवस्थानलक्षणो विरोध., स चैकत्र कालभेदेन वर्तमानयोर्भवति, यथा आम्रफले श्यामतापीततयो । उत्पद्यमाना हि पीतता पूर्वकालभाविनीं श्यामतां नाशयति। न हि तथाऽस्तित्वनास्तित्वे पूर्वोत्तरकालभाविनी। यदि स्याताम्–अस्तित्वकाले नास्तित्वाभावाज्जीवसत्तामात्रं सर्व प्राप्नुवीत। नास्तित्वकाले चास्तित्वाभावात्तदाश्रयो बन्धमोक्षादिव्यवहारो विरोधमुपगच्छेत। सर्वथैवासत पुनरात्मलाभाभावात, सर्वथा च सत पुनरभावप्राप्त्यनुपपत्तेर्नैतयोस्सहानवस्थान युज्यते॥ तथास्तित्वनास्तित्वयो प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावरूपविरोधोपि न सम्भवति। यथा–सति मणिरूपप्रतिबन्धके वह्निना दाहो न जायत इति मणिदाहयो प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावो युक्त, न हि तथाऽस्तित्वकाले नास्तित्वस्य प्रतिबन्ध, स्वरूपेणास्तित्वकालेपि पररूपादिना नास्तित्वस्य प्रतीतिसिद्धत्वात्. इति॥

और विरोध तीन प्रकारसे होता है। प्रथम वध्यघातकभावसे, अर्थात् एकके वध्य और दूसरेके घातक होनेसे विरोध होता है दूसरा एकसाथ स्थिति न होनेसे, और तृतीय प्रतिवध्य प्रतिबन्धक भावसे। उनमेसे प्रथम पक्षका विरोध सर्प नकुल तथा अग्नि और जल आदिके विषयमें है। वह वध्य घातकका विरोध एक कालमें वर्त्तमान वध्य तथा घातकके सयोग होने पर होता है क्योंकि द्वित्व आदि सख्याके तुल्य सयोग भी अनेकके आश्रयमें रहता है। और असयुक्त नकुल सर्पका तथा असयुक्त जल भी अग्निका नाश नहीं कर सकता। यदि सयोगके विना ही घातक अपने वध्यका नाश करे तब तो सर्वत्र सर्प तथा अग्नि आदिका अभाव ही होजायगा इस हेतुसे सयोग होने पर उत्तर कालमें बलवान् निर्बलको बाधा करता है और आप तो एक वस्तुमें अस्तित्वकी क्षणमात्र भी स्थिति नही स्वीकार करते जिससे उनका वध्यघातकरूप विरोधकी कल्पना हो। और यदि एक पदार्थमें उनकी वृत्ति स्वीकार करो तो अस्तित्व नास्तित्वका समान बल होनेसे वध्यघातकभावसे विरोध भी नही होसकता। और एकसाथ स्थितिका अभावरूप विरोध भी नही है क्योंकि वह एक वस्तुमें कालभेदसे दोनों विद्यमान होने पर होता है जैसे आमके फलमें श्यामता और पीतताका। क्योंकि पीतता उत्पन्न होती हुई श्यामता को नष्ट करती है। और अस्तित्व तथा नास्तित्व श्यामता पीतताके तुल्य पूर्वोत्तर कालमे होनेवाले नहीं है। और यदि–अस्तित्व नास्तित्व पूर्व तथा उत्तर कालभावी होते तो अस्तित्व कालमें नास्तित्वके अभावसे जीव सत्ता मात्रको सब पदार्थ प्राप्त होजायेंगे। ऐसे ही नास्तित्व कालमें अस्तित्वके अभावसे उसके आश्रयीभूत बन्ध मोक्ष आदि सम्पूर्ण व्यवहार विरोधको प्राप्त होजायगा। और सर्वथा असत्के अभाव अर्थात् नाशके अयुक्त न होनेसे अस्तित्व और नास्तित्वके एक साथ स्थितिका अभाव होना युक्त नहीं है। इस रीतिसे अस्तित्व और नास्तित्वका प्रतिवध्यप्रतिबन्धकभावरूप विरोधका भी

श्रीमत्पंचगुरुदेवेभ्यो नम ।

पञ्चपरमेष्ठी गुरुदेवोंको नमस्कार.

प्लवंगसंवत्सरे वैशाखशुद्धेऽष्टम्यां तिथौ बृहस्पतिवासरे पुष्यनक्षत्रे सुकर्मनामयोगे राजिवकरणे एवंविधशुभमुहूर्ते 'तंजा' नगरे श्रीमदादितीर्थेश्वरस्वामिसन्निधौ कटकलग्ने वीरनामग्रामवासिना श्रीमदनन्तसेनदेवस्वामिना प्रियाग्रशिष्येण विमलदासेन सप्तभङ्गी नाम तर्कग्रन्थो लिखित. ।

प्लवङ्ग नामक सम्वत्सर वैशाख शुद्ध अष्टमी तिथि बृहस्पति वार पुष्य नक्षत्र सुकर्म नाम योग राजीव नाम करण सयुक्त शुद्ध मुहूर्तमें तजानाम नगरमें श्रीमान् आदि तीर्थेश्वर स्वामीके समीप वीरग्रामनिवासी श्रीमान् अनन्तदेव स्वामीके प्रिय तथा श्रेष्ठ शिष्य विमलदासने इस सप्तभङ्गी तरङ्गिणी नाम तर्कग्रन्थका निर्माण किया । समाप्तोय सप्तभङ्गीतरङ्गिण्या अनुवाद (अर्थ । यह सप्तभङ्गी तरङ्गिणी नामक ग्रन्थका भाषानुवाद समाप्त हुवा ॥) करकृतमपराध क्षन्तुमर्हन्ति सन्त । हस्तकृत अपराध महात्माओंको क्षन्तव्य है ॥

जिनागमेभ्यो जिनमुनिभ्यो नमो नम ॥

१९६०

करकृतमपराध क्षन्तुमर्हन्ति सन्त ।
जिनागमेभ्यो जिनमुनिभ्यो नमो नम ॥
शून्यर्तुनवचन्द्रेऽब्दे स्वाषाढैकादशीतिथौ ।
ठाकुरप्रसादविदुषा ग्रन्थोऽय समनूदित ॥ १ ॥

श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो भूयो भूयो नमो नम. ॥

चन्द्ररसग्रहैकेऽब्दे श्रावणे मास्यमातिथौ ।
एष ग्रन्थो मयाशोधि रामजीलालशर्म्मणा ॥ १ ॥

शुद्धिपत्रम्।

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
श	शम्	१	१४
न्वय	न्वयः	,,	१९
णीम्	णीं	,,	२२
स्यादस्ति नास्तीत्यादि	स्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादि	,,	२५
अनायास ही	अनायाससे ही	२	२
सप्तभङ्गितरङ्गिणी	सप्तभङ्गीतरङ्गिणी	,,	३
इकी	इको	३	२२
विशेषता	विशेष्यता	४	६
सप्तकेति	सप्तके	,,	१४
अव्याप्ति	ऽव्याप्ति	,,	१५
अव्याप्ति दोषोंके	अव्याप्तिआदि दोषोंके	,,	३०
गो	गां	५	११
क गौ	को गां	,,	,,
दानमें	देनेमें	,,	१७
कुत इति	कुत इति	,,	१८
कथचित्, अवक्तव्य	कथचिन् अव्यक्तव्यत्व	,,	२७
सत्त्वविशिष्ट अवक्तव्य	सत्त्वविशिष्ट अवक्तव्यत्व	,,	,,
परस्परम्	परस्पर	६	८
वाक्यमें	वाक्योंमें	,,	१७
नही	नहीं	,,	२०
दोनोंमें स्थाणु तथा पुरुषम	स्थाणु तथा पुरुष दोनोंमें	,,	२८
सप्तप्रकारके उत्तर	सप्त प्रकारके प्रश्न और सप्त प्रकारके प्रश्न होनेसे ही सप्त प्रकारके उत्तर	७	५
होसक्ता	होसकता	८	९
सक्ता	सकता	,,	१२
नही	नहीं	,,	२६
क्योकि	क्योंकि	,,	,,
जायगे	जायेंगे	,,	२९
पञ्चमें	पञ्चममें	१०	३
शका	शङ्का,	,,	१४
पररूपेणासत्त्व	पररूपेणासत्त्वम्	११	२
अधिक जो पदार्थ	०	,,	९
दोनोंमेमें	दोनोंमेंसे	,,	१२
है:	है;	,,	१९
है	है	,,	२०
स्वरूपसे सदृश	स्वरूपके सदृश	,,	२२
घट	घट	,,	२९

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
मत;	मतम्;	१२	६
न मोले	नहो	,,	१०
सत्त्व,	सत्त्वम्	,,	११
असत्त्व	असत्त्वम्	,,	,,
पद हेतु है	पदवाच्य हेतु है	,,	१३
दोनो	दोनों	,,	२३
नैयायकको	नैयायकोको	,,	२४
नैयायिकको	नैयायकका	,,	२६
मानेसे	माननेसे	,,	२७
रहगा	रहेगा	,,	२९
शङ्का	शङ्का,	१३	३
कोइ	कोई	१४	१७
है	है,	१५	१
भङ्गोंकेसाथ	भङ्गोमेभी	,,	४
है	है,	,,	२२
द्रव्यमे	द्रव्यमें	,,	३०
सकलादेशत्व,	सकलादेशत्वम्,	१६	१५
पाचकत्व अस्य	पाचकत्वमस्य	१८	२२
जायगे	जायेंगे	१९	९
विशेषणत्व,	विशेषणत्वम्,	२०	२८
शङ्का	शङ्का	२१	८
करगा	करेगा	२२	९
करेगा	करेगा	,,	१०
करगा	करेगा	२४	२
तादात्म्यकाअभाव	तादात्म्य उसका जो अभाव	२६	१०
रहेगा	रहेगा	२७	५
भासैगा	भासेगा	२१	१३
तत्वतो	सत्त्वतो	३६	१९
है	हैं	३९	८
यो विवक्षितस्तत्स्वरूप	यद्विवक्षितन्तत्स्वरूप	,,	१५
असत्व	असत्त्व	,,	३२
सात्वे	सत्त्व	,,	,,
स्वरूप	स्वरूपम्	४०	१
असत्व	असत्त्व	,,	११
आदि	आदिका	,,	२३
सत्व	सत्त्व	४७	२८
असत्व	असत्त्व	,,	,,
सत्व	सत्त्व	४८	२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
असत्व	असत्त्व	४८	२
चतुष्टयका	चतुष्टयको	,,	१३
दोनोंमेसे	दोनोंमेसे	,,	२१
सत्व	सत्त्व	,,	२२
असत्व	असत्त्व	,,	,,
यह बोध	यह ऐसा बोध	,,	२७
सत्व	सत्त्व	,,	२८
असत्व	असत्त्व	,,	,,
अग	शृङ्ग	५५	२
मल्लिका पुष्प	मल्लिकाका पुष्प	५७	२८
प्रथमे	प्रथके	५९	१८
शब्द तथा अर्थमे ४	४ शब्द तथा अर्थमे	६१	३२
जड	गुड	६४	२०
यह शका ?	? यह शङ्का	६५	२
सत्व	सत्त्व	६८	३३
असत्व	असत्त्व	,,	,,
वस्तुक	वस्तुका	६९	१
अक्तव्यत्व	अवक्तव्यत्व	,,	२
सदसत्व	सदसत्त्व	,,	,
स्वरूप	स्वरूप	७०	३२
घट	घट	७२	२१
विशिष्टाववक्तव्यत्व	विशिष्टावक्तव्यत्व	,,	२३
धर्मोका	धर्मोका	७५	१८
अमेयत्व	प्रमेयत्व	७९	२०
दरिद्रत्वात्	दरिद्रित्वात्	,,	३०
ज्ञान	ज्ञानम्	८०	१५
नही	नहीं	,,	,,
शब्दका भेद अर्थ	शब्दका अर्थ	,,	३२
विरोधआठ	विरोधआदि आठ	८२	११
घटमें	पटमें	,,	३१
घटत्त्वका	घटत्वका	८३	१५
पटत्त्वका	पटत्वका	,,	,,
घटत्त्व	घटत्व	,,	१६
स्वरूपमे सभावरूपताका	स्वरूपसे भावरूपताका	,	२१
घटका भाव अभाव उभय	घटके भाव अभाव उभयरूप	८४	३१
भेदसे भी	भेद भी	८७	१५
सत्त्वकी	सत्त्वकी	,,	२०

ह० पं० रामजीलाल शर्म्मण.॥